VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2012 TO 31.12.2014)

६२, १-२ अप्रैल-मई–2013

विश्वज्योति

श्रीमद्भगवद्गीता विशेषांक

भाग–1

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : २५ रुपये

पद्मभूषण आचार्य डा. विश्वबन्धु जी

(30-09-1897-01-08-1973)

आद्य सम्पादक

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होश्यारपुर

संस्थापक–सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

आदरी सह–सम्पादक :
प्रो. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा

उप–सम्पादक :
डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
श्री विनोद चन्द्र पाण्डेय 'विनोद'	श्रीमद्भगवद् गीता के रचयिता- महर्षि वेद व्यास	कविता	2
डॉ. भवानीलाल भारतीय	सर्व स्वीकार्य धर्मग्रंथ है-भगवद्गीता	लेख	3
डॉ. सच्चिदानन्द तिवारी	गीता का जीवनदर्शन	लेख	6
डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा	श्रीमद्भगवद्गीता एक चरित्र-निर्माणात्मक ग्रन्थ है	लेख	12
डॉ. वीरेन्द्र कुमार अलंकार	गीता में अर्जुनविषादनिहित लोकचिन्ता	लेख	15
श्री एल. के. गौड	श्रीमद्भगवद्गीता में वर्ण और आश्रम	लेख	19
डॉ. नरसिंहचरण पण्डा	गीता में त्रैतवाद	लेख	21
डॉ. जयनारायण शर्मा	श्रीमद्भगवद्गीता के सन्दर्भ में ईश्वरावतार	लेख	25
डॉ. (श्रीमती) सुशवसिंह	गीतामृतम्	लेख	29
श्री कृष्णचन्द्र टवाणी	गीता का जीवन में अनुकरण करें	लेख	32
श्रीमती विद्या सारस्वत	मुझे मुक्ति चाहिये ?	लेख	34
डॉ. विजय कुमारी गुप्ता	श्रीमद्भगवद्गीता की समन्वयात्मक दृष्टि	लेख	35
प्रा. भावना जी सोनी	गीता का संदेश	लेख	40
श्री ओमप्रकाश बजाज	श्रीमद्भगवद्गीता का वैशिष्ट्य	लेख	43
डॉ. राम मेहर	गीता-सभी समस्याओं का समाधान	लेख	44
डॉ. अलंकार सुषमा	भगवद्गीता में राज्य-व्यवस्था	लेख	47
डॉ. कुलदीप सिंह आर्य	आधुनिक समाज में श्रीमद्भगवद्गीता के स्थितप्रज्ञ चित्त की प्रासंगिकता	लेख	49
डॉ. पद्मजा अमित	गीता का महत्त्व	लेख	52

विषय-सूची

डॉ. उमा रानी	सामाजिक दृष्टि से गीता की उपयोगिता	लेख	54
श्री सेवारा अमरकुमार मस्रीभाई	श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश	लेख	56
डॉ. आदित्य आङ्गिरस	गीता में स्थितप्रज्ञ के लक्षण	लेख	59
डॉ. शैलजा अरोड़ा	स्थितप्रज्ञ महापुरुष की पहचान	लेख	62
डॉ. दिनेश चन्द्र चौबीसा	श्रीमद्भगवद्गीता में आत्म-तत्त्व का चिंतन	लेख	65
श्री गोपाल जी गुप्त	श्रीमद्भागवत गीता में विवशता-दर्शन	लेख	67
श्री ताराचन्द आहूजा	गीता में ईश्वरवाद	लेख	69
डॉ. शिवानी शर्मा	गीता में ध्यानयोग का स्वरूप	लेख	72
ठाकुर नरवातसिंह कुमार	श्रीमद्भगवद्गीता में आदर्श मानव की कल्पना	लेख	75
डॉ. जसबीर चावला	गीता में आहार-संहिता	लेख	77
डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'	श्रीमद्भगवद्गीता के अद्भुत व्याख्याकार- विद्यारत्न संन्यासी श्री नारायण स्वामी	लेख	80
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल	भगवद्गीता में वर्णित प्रियभक्त	लेख	83
श्री अजय कुमार	गीता में कर्म-योग	लेख	85
श्री विजय कुमार	गीता तथा उपनिषत्साहित्य में कर्म शब्द प्रयोग	लेख	88
	विविध-समाचार		91
	संस्थान-समाचार		94

दो शब्द

गीता –चार मात्रा और दो अक्षरों वाले इस शब्द के श्रवण मात्र से ही जिस अर्थ का बोध होता है, उसकी कोई सीमा नहीं। यह ज्ञान का वह अपूर्व भण्डार है, जो निखिल विश्व के विद्वानों द्वारा मुक्त हस्त से वितरित करने पर भी न रिक्त हुआ है और न होगा। इसी की ओर संकेत करते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा भी है कि यह जो ज्ञान है यह अनादि है। बहुत पहले मैंने इस को सूर्य को कहा था, सूर्य ने वैवस्तव मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु से कहा था, पर किसी कारणवश इस धरा पर यह ज्ञान लुप्त हो गया था, उसी को मैं आज तुझे अपना सखा तथा भक्त समझ कर कह रहा हूँ (गीता, 4,1–3)। यही कारण है कि शब्दरूप से लघु होने पर भी ज्ञान–विज्ञान से विशाल यह ग्रन्थ मानव जीवन की अनेक ग्रन्थियों को खोलने में समर्थ है। गीता की यह विशेषता है कि इसमें मानव जीवन से सम्बन्धित सभी पहलुओं पर विचार करते हुए, उसके जीवन की जटिल से जटिल समस्याओं को बड़े सरल ढंग से अनेक प्रकार से समझाया गया है। संक्षेप से जीवन के विस्तार को समझाने वाला इसके अतिरिक्त कोई अन्य ग्रन्थ नहीं। इसका मुख्य कारण है –भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को किसी विशेष सम्प्रदाय या किसी विशेष सिद्धान्त तथा धर्म को लेकर गीता का उपदेश करना नहीं था, अपितु अर्जुन की अनेक शंकाओं का समाधान कर उसको संसार क्षेत्र में सर्व प्रकारेण लड़ने के लिए तैय्यार करना था। अतः स्पष्ट है कि यह महान् ग्रन्थ न किसी जाति विशेष, न धर्म विशेष, न देश विशेष और न काल विशेष की बात कहता है, अपितु जो जिस भाव से जिस किसी प्रश्न या समस्या का समाधान इस ग्रन्थ से करना चाहेगा उसको पूर्णतः उसका समाधान प्राप्त होगा।

इस प्रकार से इस महान् ग्रन्थ की महिमा को अपनाते हुए इस वर्ष '**गीता विशेषाङ्क**' प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि विद्वान् लेखकों के द्वारा विभिन्न विषयों पर भेजे लेखों से विश्वज्योति के पाठकों को अवश्य ऐसी सामग्री प्राप्त होगी, जो उनको गीता जैसे महान् ग्रन्थ को पढ़ने, समझने तथा उसमें कहे हुए मार्ग पर चलने की प्रेरणा देगी।

इससे पाठकों को तो लाभ होगा ही, साथ ही लेखकों को भी इस प्रकार के लेखों द्वारा गीता के महान् उपदेश तथा कल्याणप्रद भगवद्–भक्ति के प्रसार तथा प्रचार से सुख प्राप्त होगा। इस दिशा में मुझे भगवान् श्रीकृष्ण के ये वचन स्मरण आ रहे हैं कि –

य इमं परमं गुह्यं मद्–भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥ (गीता, 18. 68)।

विश्वज्योति के पाठकों को भी इसमें अवश्य ऐसी सामग्री प्राप्त होगी जो उनको गीता जैसे महान् ग्रन्थ को पढ़ने, समझने तथा उसमें कहे हुए मार्ग को अपनाने की प्रेरणा देगी।

जिन विद्वान् लेखकों ने अपना अमूल्य समय निकालकर विश्वज्योति के इस अंक के लिए लेख भेजे हैं, उन सभी का मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। भविष्य में भी इसी प्रकार अपने विचारों को लेखों७ के माध्यम से विश्वज्योति में प्रकाशनार्थ भेजते रहेंगे, इसी आशा के साथ

विनीत

– इन्द्रदत्त उनियाल (सम्पादक)

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६२ होश्यारपुर, चैत्र-वैशाख २०७०; अप्रैल-मई २०१३ संख्या १

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणो
ऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं निदधे
द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय॥

(अथर्व. 5. 9, 7)

सूर्य मेरी (चक्षुः) आंख है। (वातः) वायु मेरा प्राण है। अन्तरिक्ष मेरी आत्मा और पृथिवी मेरा शरीर है। (इस कारण) अभी तक (अस्तृतो नामाहमयमस्मि) मेरा कुछ बिगड़ा हुआ नहीं है (आगे भी न बिगड़े और मेरा सदा) संरक्षण होता रहे। (इसके लिए) मैं (आत्मानं निदधे द्यावा-पृथिवीभ्यां गोपीथाय) अपने आपको भूमि और आकाश की सेवा में प्रस्तुत किए हुए हूँ।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

श्रीमद्भगवद् गीता के रचयिता-

महर्षि वेद व्यास

-श्री विनोद चन्द्र पाण्डेय 'विनोद'

महाकवि वेद व्यास महान्।

महाभारत का कर निर्माण,
रखा कविता का पुष्ट प्रमाण।
किया था महाकाव्य का सृजन,

मिला था वाणी का वरदान।
महाकवि वेद व्यास महान्॥

दिया गीता का शुभ सन्देश।
गूँजते अब भी प्रिय उपदेश॥
बताया जन-जीवन का सार,

मिला सबको आध्यात्मिक ज्ञान।
महाकवि वेद व्यास महान्॥

कृष्ण-अर्जुन का शुचि संवाद।
मिटाता मन से गहन विषाद॥
सभी को देता जीवन-दृष्टि,

मनुजता का करता उत्थान।
महाकवि वेद व्यास महान्॥

किया संस्कृत को श्री-सम्पन्न।
काव्य पढ़ पाठक हुए प्रसन्न॥
तुम्हारा योगदान अप्रतिम,

तुम्हारा अनुपमेय अवदान।
महाकवि वेद व्यास महान्॥

- सी-10, सेक्टर जे, अलीगंज, लखनऊ -226024 (उ. प्र.)

सर्व स्वीकार्य धर्मग्रंथ है-
भगवद्गीता
-डॉ. भवानीलाल भारतीय

योगेश्वर कृष्ण भगवान्[1] के विचारों को श्लोकबद्ध किया महाभारत के रचयिता व्यास देव ने। सात सौ श्लोकों तथा अठारह अध्यायों में विभक्त इस दार्शनिक ग्रंथ को भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ कहा जा सकता है। जितना यह स्वदेश में लोकप्रिय है उतना ही अन्य देशों में भी इसे मान्यता प्राप्त हुई है। गीता के माहात्म्य का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि सारी उपनिषदें गौ हैं और इनके सार रूप दूध को दुहने वाले स्वयं कृष्ण हैं। इस अमृतोपम दुग्ध का सेवन कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने किया।[2] प्रत्येक अध्याय की समाप्ति जिस वाक्य से होती है उसमें इस गीताशास्त्र को उपनिषद् तथा योगशास्त्र कहा गया है।[3] वस्तुतः गीता भारत के धार्मिक, नैतिक तथा दार्शनिक विचारों का ऐसा समुच्चय है जो सब लोगों के द्वारा ग्रहण किया जाता है, सभी आचार्य, दार्शनिक तथा धर्मशास्त्रकार गीता को अपने विचारों के लिये उद्धृत करते हैं। गीता का आरंभ युद्धक्षेत्र में युद्ध के लिए प्रस्तुत अपने ही नातेदारों, सगे-सम्बन्धियों को देखकर अर्जुन के हृदय में उत्पन्न उस विषाद से होता है जिसके परिणामस्वरूप उसके हाथ का गाण्डीव धनुष फिसलने को है, उसकी त्वचा में जलन होने लगती है, मुंह सूखने लगता है, आसन्न युद्ध की विभीषिका उसे रोमांचित कर देती है। उसकी इस दयनीय स्थिति को देखकर आरम्भ में उसके ही सारथी बने श्रीकृष्ण उसे क्षात्रधर्म तथा स्वकर्त्तव्य पालन का हवाला देकर युद्ध के लिये तैयार करते हैं।

श्रीकृष्ण का कथन है कि अर्जुन तो उन लोगों के लिये शोक करता है जिनके लिये शोक नहीं करना चाहिये तथा वैराग्य की बातें बढ़-चढ़कर करता है मानो कोई बड़ा दार्शनिक, चिंतक अपना प्रवचन देता हो- प्रज्ञावादांश्च भाषसे।[4] किन्तु सत्य तो यह है कि जो मर चुके हैं या मृतप्रायः हैं उनके लिये बुद्धिमान् लोग कभी शोक नहीं करते।[5]

इस प्रसंग में उन्होंने स्थूल शरीर की नश्वरता तथा इसमें निवास करने वाली आत्मा की अमरता

1. यत्र योगेश्वरः कृष्णः (गीता 18/78)
2. सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः। पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता गीतामृत।
3. उपनिषत्सु योगशास्त्रेषु आदि।
4. गीता, 2/11
5. गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः। गीता 2/11.

का उल्लेख किया तथा जीर्ण वस्त्र को उतारकर नये वस्त्र धारण करने का प्रसिद्ध दृष्टांत देकर भौतिक शरीर की परिवर्तित स्थितियों की चर्चा की।[6] उनका कहना था कि शाश्वत तत्व जीवात्मा का कभी विनाश नहीं होता और जो है ही नहीं उसके अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जाता। शरीर भले ही नष्ट हो जाये, उसमें निवास करने वाली आत्मा अविनाशी है। उन्होंने दुष्ट-दलन में तत्पर रहने वाली क्षत्रिय-जाति के कर्त्तव्यों को बताया और कहा कि धर्मयुद्ध में लड़ना तो क्षत्रिय के लिये स्वर्गद्वार में प्रवेश करना है।[7]

इसी प्रसंग में श्रीकृष्ण ने निष्काम-कर्म की महिमा की चर्चा की तथा द्वितीय अध्याय में स्थितप्रज्ञ स्थिति[8] को प्राप्त कर्त्तव्यनिष्ठ साधक की चर्चा की। उनके अनुसार स्थितप्रज्ञ व्यक्ति न तो दु:ख में उद्वेलित होता है और सुखी होने पर भी उसमें आसक्त नहीं होता। भय तथा क्रोध से निर्लिप्त वह शुभ और अशुभ, लाभ-हानि तथा निंदा-स्तुति के प्रति तटस्थता रखता है।[9] इन्द्रियों को उनके काम्य-विषयों से निर्लिप्त रखने में कृष्ण उसे कछुए का दृष्टांत देते हैं जो किसी बाह्य पदार्थ के सम्पर्क में आने-मात्र से स्वयं के अंगों को सिकोड़कर मात्र प्रस्तरशिला के तुल्य बन जाता है- **यदा संहरते चायं कूर्मो अंगानीव सर्वशः** (2/58)। गीता का एक महत्वपूर्ण योगदान है दार्शनिक तथा क्लिष्ट प्रसंगों को व्यावहारिक और बोधगम्य शैली में विवेचित करना। श्रीकृष्ण ने योग को कृच्छ्र साधना का पर्याय नहीं माना। उनके विचारानुसार **योगः कर्मसु कौशलम्।**[10] स्वकर्म में कुशलता दिखाना तथा कर्त्तव्य-कर्म को सफलतापूर्वक करना ही योग है। इस प्रकार फल की आशा को छोड़कर मात्र कर्त्तव्य मानकर कर्म करना ही उनके विचार से श्रेयस्कर है। योग की भांति उन्होंने धर्म की विवेचना भी व्यावहारिक धरातल पर की तथा स्वकर्त्तव्य पालन को ही धर्माचरण माना। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' कहकर उन्होंने समाज के सभी वर्गों को स्वकर्त्तव्योन्मुख बनाया।

गीता के दार्शनिक विचार स्पष्ट तथा सर्व-स्वीकार्य हैं। उन्होंने सांख्य और योग को एक ही सिक्के के दो पहलू बताया। योगनिष्ठ व्यक्ति को जिस प्रकार यमनियमों का पालन करने, प्राणायाम परायण होने तथा प्रवण जप में तत्पर होने की बात कही वह सर्वांश में पातंजल योगशास्त्र के अनुकूल है। उन्होंने कर्मकांड को एक सीमा तक ही स्वीकार किया और यज्ञ को व्यापक अर्थवत्ता प्रदान की। प्रज्वलित अग्नि में घृतादि पदार्थों की आहुतियां देना ही यज्ञ नहीं है। उनकी दृष्टि में

6. गीता, 2/22.
7. धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयो आदि गीता, २/३१.
8. गीता का स्थितप्रज्ञदर्शन गीता, 2/55-72
9. गीता, 2/56.
10. गीता- तृतीय अध्याय।

द्रव्ययज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ तथा ज्ञानयज्ञ आदि भी यज्ञ हैं। परोपकार वृत्ति तथा सामाजिक हितकारी कार्यों का करना याज्ञिक जीवन जीना है। गीता का भक्तियोग एक प्रकार का शरणागति योग है जहां श्रीकृष्ण की स्पष्ट घोषणा है कि सब प्रकार के मानसिक द्वंद्वों तथा उलझन–भरे कृत्यों को छोड़कर यदि कोई उनके विचारानुसार आचरण करे तथा उनकी शरण में आये तो वे उसे पापमुक्त कर देंगे– **सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज** (18/66)।

गीता में श्रीशंकराचार्य को मान्य अद्वैतवाद के विचार मिलते हैं तो रामानुज प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत मत की पुष्टि भी मिलती है जहां वे जीवात्माओं को अग्नि से पृथक् हुई चिंगारियों (स्फुलिंग) के तुल्य कहते हैं। पुरुष यदि सामान्य जीव का वाचक है तो उत्तम पुरुष की परमात्मा संज्ञा है। यही कारण है कि सभी दर्शनकार अपनी–अपनी दृष्टि से गीता की व्याख्या करते हैं। शंकर और रामानुज की भांति भक्ति सम्प्रदायों में गीता की मान्यता है। लोकमान्य तिलक ने स्वगीता भाष्य को कर्मयोग का शास्त्र कहा तो महात्मा गाँधी ने उसे अनासक्तियोग कहा। राधाकृष्णन, श्री राजगोपालाचार्य तथा आचार्य विनोबा ने इसकी व्याख्या में ग्रंथ लिखे तो श्रीमती ऐनीबेसेंट ने गीता को भगवान् के गाये गीतों की संज्ञा दी। उर्दू, फारसी के अतिरिक्त यूरोप की सभी भाषाओं में गीता के अनुवाद उसकी अपार लोकप्रियता को दर्शाते हैं।

–3/5, शंकर कालोनी, श्रीगंगानगर।

गीता का जीवनदर्शन

–डॉ. सच्चिदानन्द तिवारी

सारे विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है जिसके जनजीवन में दर्शन और दार्शनिक-सिद्धान्त की गहरी पैठ है। अन्य देशों में दर्शन विद्वानों की बुद्धि और वाणी के विलास का साधन है, बुद्धिजीवी वर्ग के विमर्श का विषय है तथा यह जन-साधारण की धारणाओं और मान्यताओं में अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ नहीं है। भारत में जनसाधारण के सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की प्रत्येक धारणा व रीतिरिवाज में दर्शन अभिन्न रूप से सम्बद्ध है। इसका कारण है यहां के दार्शनिक सिद्धान्तों का धर्म से सम्बद्ध होना। धर्म यहाँ केवल भावना की वस्तु नहीं रही है, इसे बुद्धि और तर्क के आधार पर प्रतिष्ठित किया गया है। प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय ने अपने-अपने दर्शन-सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। उनके आधार पर, तर्क और बौद्धिक विवेचन के आधार पर अपना धर्म उन्होंने फैलाया है। दर्शन द्वारा समर्थित होने के कारण ही हमारे धार्मिक-सिद्धान्त चिरन्तन और व्यापक बन गये। मध्यकाल तक आते-आते उनके साथ परम्परावादिता और रीतिवाद का आधिक्य होने के कारण धर्म का स्वरूप विकृत हो गया और इसी कारण जनजीवन पर उसका आधिपत्य शिथिल होता चला गया।

श्रीमद्भगवद्गीता हमारे धर्म-ग्रन्थों में एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल मणि है। यह ग्रन्थ वैदिक धर्म के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में वेद के समान आज करीब ढाई हजार वर्ष से सर्वमान्य तथा प्रमाण स्वरूप हो रहा है। इसका कारण भी उक्त ग्रन्थ का महत्त्व ही है।

इस ग्रन्थ का जन्म उस समय होता है जब अर्जुन युद्धभूमि में युद्ध के लिए उतरता है किन्तु सगे-सम्बन्धियों को देखकर वह युद्ध नहीं करना चाहता। श्रीकृष्ण उसे युद्ध-धर्म के लिए प्रेरित करते हैं। यह वार्तालाप ज्ञान, भक्ति एवं कर्म के मार्ग के मूल स्रोत पर आधारित है, साक्षात् ईश्वर तथा मनुष्य के मध्य संवाद में कहा गया है जो कि आधुनिक काल के ध्येयवाद के लिए आवश्यक है।

गीता दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य -

1. मोक्ष प्राप्ति का उद्देश्य -

गीता का प्रथम उद्देश्य मानव को आवागमन, जन्ममरण के बन्धन से मुक्त करा कर मोक्षप्राप्ति कराना है। मोक्ष-प्राप्ति निष्काम-कर्म द्वारा ही सम्भव है। गीतादर्शन के अनुसार ज्ञान केवल पुस्तकीय ज्ञान न होकर आत्मज्ञान होना चाहिये जिससे व्यक्ति "स्व" को पहचान सके और उसका विकास मन पर नियन्त्रण कर - काम,

क्रोध, मद, लोभ, मोह, माया आदि आसक्तियों से दूर रह सके। इन्द्रिय निग्रह द्वारा ही सांसारिक दु:खों से छुटकारा पाना सम्भव है। अत: गीतादर्शन के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ''मोक्षप्राप्ति'' है।

2. उच्च सात्विकता के विकास का उद्देश्य –

मोक्षप्राप्ति सात्विक जीवन से ही प्राप्त की जा सकती है। सात्विक जीवन का आधार इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके ही प्राप्त किया जा सकता है तथा उच्च नैतिकता ही सात्विकता की ओर प्रेरित करती है। नैतिक विकास के लिए धार्मिक एवं सामाजिक मूल्य ही आधार हैं। सामाजिक मूल्य समाज पर निर्भर करते हैं अर्थात् समाज के अनुसार ही सामाजिक मूल्यों का निर्धारण किया जाता है। अत: व्यक्ति की उच्च नैतिकता एवं सात्विकता का मूलाधार समाज है। व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। अत: उसे समाज के अनुकूल आचरण एवं व्यवहार करना पड़ता है।

3. निष्काम कर्म की प्रेरणा का उद्देश्य –

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूः मा ते संगोस्त्वकर्मणि॥''

गीता का उक्त श्लोक निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देता है। कर्म करना मानव का कर्त्तव्य है, कर्म का फल देना अन्य शक्ति के हाथ में है। इस प्रकार गीतादर्शन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को 'कर्म' करने की प्रेरणा देना है। कर्त्तव्य के द्वारा ही व्यक्ति लौकिक एवं पारलौकिक, भौतिक एवं अभौतिक सुखों को प्राप्त कर सकता है। कर्त्तव्यहीन/ कर्महीन व्यक्ति इस जगत् में कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता है। अत: बालकों को शिक्षा द्वारा कर्म प्रधान जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये।

4. चिंतनशक्ति विकसित करने का उद्देश्य–

गीता का उपदेश भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ''कुरुक्षेत्र'' के मैदान में उस समय दिया था, जब अर्जुन मोहान्धकार में फँस कर अपने कर्त्तव्य को भुला बैठा था और उसकी चिंतनशक्ति कुंठित हो गयी थी। अत: भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अच्छा–बुरा, हित–अहित, नैतिक–अनैतिक, कर्म–अकर्म, अपना–पराया आदि का ज्ञान कराया। परिणामत: अर्जुन की चिंतन–शक्ति का विकास हुआ और उसे स्वकर्म का बोध हुआ। अत: गीतादर्शन के अनुसार बालक के चिंतन–मनन को विकसित करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये।

5. धार्मिक जीवन के विकास का उद्देश्य–

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है– यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत........ आदि अर्थात् हे अर्जुन! जब–जब धर्म की हानि और अधर्म का प्रादुर्भाव होता है, तब–तब मैं जन्म लेता हूँ और अपने भक्तों का उद्धार करता हूँ। अत: गीतादर्शन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य

बालक में धार्मिकता की भावना का विकास करना होना चाहिये ताकि वह धर्म-अधर्म में अन्तर कर सके।

6. ईश्वर की सत्ता सर्वोपरि सत्ता –

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के मोह को दूर करने हेतु अपना "विराट् रूप" दिखलाते हुए कहते हैं कि, हे अर्जुन! संसार नश्वर है सब कुछ मेरी सत्ता के अधीन है। मैं जैसा चाहता हूँ वैसा ही होता है। मेरी इच्छा के विपरीत एक पत्ता तक भी हिल नहीं सकता। जीवन-मरण पर मेरा पूरा अधिकार है। अत: गीतादर्शन के अनुसार मानव में ईश्वर की सत्ता को सर्वोपरि मानने की भावना का विकास होना चाहिये ताकि उसकी अहं की भावना समाप्त हो सके और वह सब कार्य ईश्वर को समर्पण की भावना से पूर्ण करे।

भारतीय दर्शन विश्व में सबसे अधिक प्रशस्त, परिमार्जित और समृद्ध माने जाते हैं। इसका कारण है उनकी व्यापकता, सार्वभौमिकता और तर्कमूलक विवेचना। हर तरह के दार्शनिक विचार हमारे यहां विवेचित हुये हैं और उन्हें धर्म के माध्यम से जीवन में ढाला गया है। धार्मिक मान्यताओं के माध्यम से दार्शनिक सिद्धान्तों को दैनिक जीवन में उतारना भारतीय संस्कृति की विशेषता है। दार्शनिक सिद्धान्तों के इस व्यापक विवेचन के जन्मदाता के रूप में भारत का नाम सदा से लिया जाता रहा है। भारत को विश्वगुरु इसी आधार पर कहा गया है। भारतीय दर्शन के प्राय: सभी सिद्धान्त भगवद्गीता में समन्वित हो गये हैं। श्रीकृष्ण ने उन सब दार्शनिक विचारों को इसमें सर्वबोध्य एवं सरल रूप से समझाया है जो मानव जीवन को प्रेरणा देते रहे हैं और जिनके अनुशीलन से हमारा जीवन अधिक परिष्कृत एवं संस्कारित हो सके। ये सिद्धान्त सार्वभौम हैं, चिरन्तन और व्यापक हैं। किसी भी समय किसी भी भूभाग में उनका महत्व अक्षुण्ण है।

दार्शनिक, सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यों का व्यापक विवेचन करने वाली गीता के उपदेशक होने के कारण ही श्रीकृष्ण को जगद्गुरु कहा जाता है- "कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्।" गीता में सभी दर्शनों और धर्मों का निचोड़ है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वेदों, उपनिषदों व अन्य धर्मग्रन्थों में जिन सिद्धान्तों और जीवनमूल्यों को दार्शनिक रीति से प्रतिपादित किया गया था, उनका संक्षेप में गीता में वर्णन तो है ही, उन्हें जनजीवन के आदर्शों के रूप में हम किस प्रकार प्रयोग में ले सकते हैं- इसका भी सरल निरूपण इसमें उपलब्ध है। इसलिए गीता को दार्शनिकों ने दर्शन, धार्मिकों ने धर्मशास्त्र, जननायकों ने कर्म की प्रेरणा देने वाला आधार ग्रन्थ और भक्तों ने भक्तिमार्ग की प्रवर्तक पुस्तक माना है।

गीता ईसा से चालीस शताब्दियों पहले भले ही लिखी गयी है, परन्तु कुछ ऐसे मौलिक जीवनमूल्य निहित हैं जिनसे आज विश्व का कोई

भी समाज उसी प्रकार प्रेरणा ले सकता है जिस प्रकार वर्षों पहले ली जाती रही होगी। गीता के ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग की अपेक्षा कर्मयोग का सिद्धान्त अधिक व्यावहारिक है। गीता से पहले वेदों के कर्मकाण्ड में कर्म का अर्थ यज्ञ, अनुष्ठान और बाद में पूजा समझा जाता था। किन्तु कुछ परवर्ती सम्प्रदायों ने कर्म का अर्थ व्रत, अनुष्ठान, सदाचार, तपस्या और ध्यान लगाया है। कर्म की इन व्याख्याओं ने भारतीय समाज की कर्मठता को पूर्णतः शिथिल कर दिया था। यह भी माना गया था कि बिना संन्यास के मुक्ति नहीं हो सकती।

गृहस्थियों को उपदेश दिये जाने लगे कि सांसारिक कर्म पाप के साधन हैं- वे बन्धन पैदा करते हैं। मोक्ष प्राप्त करने के लिये कर्म-संन्यास आवश्यक है। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग कर्म से विमुख होने लगे, साधु-संन्यासियों की संख्या बढ़ने लगी। समाज में फैल रही इस अकर्मण्यता का निवारण गीता के कर्मयोग के सिद्धान्त ने किया। कर्म का वास्तविक अर्थ लोगों ने समझा। कर्मबन्धन से मुक्ति का क्या तात्पर्य है, यह स्पष्ट हुआ। गीता स्पष्ट घोषणा करती है कि- कर्मबन्धन से मुक्ति प्राप्त करने का यह उपाय नहीं है कि कर्म ही न किया जाये। संन्यास लेने से ही सिद्धि होती हो यह भी यथार्थ नहीं है। कर्म का त्याग तो चाहकर भी नहीं किया जा सकता। बरबस कर्म तो करना ही पड़ता है। कर्म से मुक्ति प्राप्त करने का अर्थ है कर्म के फल की कामना पर विजय पाना। यही कर्मयोग है। इन्द्रियों पर और लालसा पर विजय प्राप्त करके जो निरन्तर कर्म करता रहता है, वही कर्मयोगी है- वह कर्म बन्धन में लिप्त नहीं होता।[1] संन्यास-योग और कर्मयोग दोनों में कौन अधिक श्रेयस्कर है, इस विषय में गीता का मत स्पष्ट है। कर्म को ही अधिक श्रेष्ठ बतलाते हुये श्रीकृष्ण कहते हैं-

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते॥

लोकमान्य तिलक ने गीता में इसी कर्मयोग के सन्देश को सुना था और इसी को केन्द्र में रखकर उन्होंने गीता की एक नये प्रेरणादायक दृष्टिकोण से व्याख्या की। व्यावहारिक क्षेत्र में सामाजिक मर्यादा और आदर्शों को बनाये रखने में प्रत्येक वर्ग का क्या कर्त्तव्य है, इस पर भी गीता में बड़ा ही मार्मिक विवेचन उपलब्ध है। निवृत्तिमार्ग और संन्यास को महत्व देने वाले धर्मग्रन्थों ने जहाँ लौकिक मर्यादा और सामाजिक आदर्शों को उपेक्षित कर केवल व्यक्तिनिष्ठ अध्यात्म का उपदेश किया है, वहीं गीता ने समाज व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिये लोकनायकों के कर्त्तव्य बड़े सुन्दर ढंग से बतलाये हैं। लोकसंग्रह अर्थात् समाज-व्यवस्था को परिचालित करने के लिये निर्धारित लौकिक कर्त्तव्यों को गीता ने बहुत

---

1. गीता, 3.4-5.

महत्व दिया है। लोकनायकों का कर्त्तव्य यह बतलाया गया है कि वे स्वार्थ और आसक्ति का त्याग करके लोकमर्यादा की स्थापना हेतु एक आदर्श प्रस्तुत करने के लिए कर्म करें।[2]

महापुरुष ही सच्चे लोकनायक हो सकते हैं, क्योंकि नेताओं के आचरण और आदर्श पर सारा समाज चलने का प्रयत्न करता है। इसलिये यह आवश्यक है कि हमारे जननायक तथा उनके आदर्श उदात्त हों। इस शाश्वत सत्य को सीधे-सादे शब्दों में गीता ने कहा है- **यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।''**

इसलिये यह आवश्यक है कि हमारे लोकनायक सही मार्ग का निर्धारण करें। सही रास्ता क्या है और गलत क्या यह जानना बहुत आवश्यक है- पर इसका ज्ञान करना आसान नहीं है। सही रास्ता जानने के लिए पहले गलत रास्ता जानना भी जरूरी हो जाता है और ये भी जान लेना आवश्यक है कि किसी भी रास्ते पर जाकर अकर्मण्य बैठे रहने का भी क्या परिणाम हो सकता है-

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।
कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।[3]

वही मार्ग श्रेष्ठ है जिसमें आसक्ति रहित होकर हम अपना अपना निर्धारित कर्त्तव्य करते जाएँ। यही बुद्धिमान् मनुष्यों का मार्ग है। कर्म-संन्यास की नई व्याख्या करते हुये गीता ने कहा है कि संन्यास का वास्तविक अर्थ है किसी से द्वेष न करना, न किसी चीज़ की लालसा करना। इस प्रकार के जीवन से मनुष्य द्वन्द्वरहित हो जाता है- वही बन्धनमुक्त है।[4]

संसार में रहते हुये भी मोहपाश में लिप्त न होना हमारा आदर्श होना चाहिये, क्योंकि सांसारिक लाभों की कामना का परिणाम होता है अन्यायपूर्वक भी अर्थसंचय की प्रवृत्ति, ईर्ष्या, द्वेष, शत्रु को परास्त करके गर्व का अनुभव। इस प्रकार की मृगमरीचिका का अन्त नहीं होता।

ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्।
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्।
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी।
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।[5]

इन अनर्थ परंपरा के शमन का उपाय है निःस्पृह बनने की चेष्टा करना। सुख, दुःख, निन्दा, प्रशंसा, तरक्की, अवनति, मान, अपमान और शत्रु-मित्र में समान बर्ताव का प्रयत्न करना।

2. गीता, 3.25.
3. गीता, 4.16-18.
4. गीता, 5.3.
5. गीता, 16.12-14.

इससे मनुष्य सामाजिक कष्टों से अपने आप ऊपर उठेगा।[6] सिद्धि की प्राप्ति के लिए बरबस काया को कष्ट देने वाले पन्थों की निन्दा गीता में की गयी है-

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान् विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥[7]

शरीर के तत्वों को और अन्तःस्थित ईश्वर को प्रभावहीन करने वाले अघोरी असुर ही हैं।

गीता के आदर्श दैनिकचर्या तथा सात्विक आहार के प्रकार, निःस्वार्थ भावना से दान और त्याग का मार्ग आदि सीधे-साधे शब्दों में समझाये गहे हैं। इनकी प्रतिपादनशैली सार्वदैशिक व सार्वकालिक है।

समाज की सुव्यवस्था के लिये प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वर्ग के निर्धारित कर्त्तव्य होने चाहिये- उन कर्त्तव्यों और अधिकारों की सीमा में रहकर नियत कर्म प्रत्येक का कर्त्तव्य है। इस सीमा को लांघ कर एक दूसरे के क्षेत्र में दखल देने से अराजकता पैदा हो जाती है- इस सामाजिक सत्य को भी गीता ने पहचाना है, यह इन दो श्लोकों से स्पष्ट है-

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्म-निरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।
श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्॥[8]

दूसरे के लिये नियत कर्त्तव्य यदि आप अच्छी तरह कर सकते हों तो भी वह आपको नहीं करना है। अपने लिये नियत कार्य अपनी शक्ति के अनुसार आपको करना है। आपके लिये नियत कार्य चाहे थोड़ा ही क्यों न हो पाये, दूसरे के कार्य करने से अच्छा है।

गीता के इस सिद्धान्त का, आज की स्थिति में, यदि हम पूर्णतः पालन कर पायें तो बहुत से संकट जो आज आ रहे हैं- दूर हो सकते हैं- यह सहज ही समझ में आ सकता है। यही गीता का जीवनदर्शन है।

-उपनिदेशक, राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थान, नई दिल्ली।

6. गीता, 14.24.25.
7. गीता, 17.6.
8. गीता, 18.45.47.

श्रीमद्भगवद्गीता एक चरित्र–निर्माणात्मक ग्रन्थ है

–डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा

श्रीमद्भगवद्गीता सभी उपनिषदों का सार है। इसमें व्यवहार और परमार्थ का समन्वय है। इसमें जो आचार–पक्ष मिलता है, वह सब चरित्र सम्बन्धी ही है। यह सब व्यक्ति के चरित्र के निर्माण–सम्बन्धी ही है। मनुष्य जिसके द्वारा यथोचित आचरणरूप सदाचार का पालन करता है, उसे चरित्र और उसके द्वारा मानव–हित की जो सुरक्षा होती है, उसके कारण उसके तात्विक स्वरूप को 'चारित्र्य' कहते हैं–

सम्यक् चरति येनातश्चरित्रं व्यवहारतः।
चरितस्त्राणशीलत्वाच्चारित्र्यमिति कथ्यते॥

गीता में इसी पृष्ठभूमि पर आधृत चारित्र्य का उत्तम उपदेश मिलता है। इसके अनुसार व्यवहार करने से व्यक्ति के चरित्र का निर्माण स्वतः ही होता रहता है। गीता का मानव सम्बन्धी चरित्र का उपदेश नर को नारायण बना देने की शक्ति प्रदान करता है। गीता के प्रारंभ में पाण्डवों और कौरवों के अनेक वीरों का उल्लेख मिलता है। उनमें से अनेक वीर वास्तव में ही चरित्रवान् हैं और उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो चरित्र सम्बन्धी सन्देह से घिरे हुए हैं। चरित्रवान् लोगों में श्रीकृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर, द्रोण तथा भीष्म आदि हैं और दूसरी ओर सन्देहात्मक चरित्र वाले लोग दुर्योधन, कर्ण तथा अश्वत्थामा आदि हैं। पाण्डवों की सेना का नेतृत्व चरित्रवान् वीरों के हाथ में है (1.3.6); जिसकी चर्चा स्वयं दुर्योधन ने गुरु द्रोणाचार्य से की है और स्वयं उसी ने अपने पक्ष में केवल द्रोण, भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण तथा भूरिश्रवा (1.7–9) का उल्लेख किया है। इसके साथ ही उसने भीम से रक्षित पाण्डवों की सेना की युद्ध में विजय–सम्बन्धी पर्याप्त सम्भावना तथा भीष्म से रक्षित अपनी सेना को असमर्थ बताया है।

दुर्योधन के इस व्यथाभरे वचनों से आभासित होता है कि भीम के पक्ष में चरित्रबल तथा चरित्रवान् लोगों की अधिकता थी और भीष्म के पक्ष में इसकी अल्पता थी। इस सत्य को दुर्योधन का दुर्बल मन भीतर से समझ रहा था। इसीलिए उसके मुख से भावी पराजय की आशङ्का बाहर आ गई थी। सत्य और असत्य का, न्याय और अन्याय का, चरित्र की सबलता और दुर्बलता का निर्णय दुर्योधन की ही आत्मा ने इस प्रकार कर दिया कि जिस पक्ष में चरित्रवान् एवं धार्मिक लोग अधिक होते हैं, उसकी विजय का होना, उसके ऐश्वर्य की वृद्धि का होना तथा उसके सुयश का व्याप्त रहना निश्चित है। वस्तुतः गीता के उपसंहार का भी यही सन्देश है–

डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा

**यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥** (18.78)

गीता में उदात्त एवं सर्वोत्कृष्ट चरित्र के प्रेरक पात्र मुख्यतया दो हैं– श्रीकृष्ण और अर्जुन। चरित्र की व्यावहारिकता और चरित्र की पारमार्थिकता में संन्तुलन बनाए रखने के लिए ही गीता में अर्जुन और श्रीकृष्ण को श्रोता एवं वक्ता के रूप में खड़ा किया गया है।

सर्वांगीण चरित्र के उपदेश की जैसी सुन्दर एवं उपयुक्त पृष्ठभूमि गीता में मिलती है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। कारण यह है कि पुत्र, धन और यश, इन तीनों एषणाओं को दांव पर लगाकर मृत्यु से जूझने के लिए समस्त मानवता की समस्याओं को, उसके अन्तर्द्वन्द्व को तथा उसके दम्भ और निश्चल भाव को परखने का जैसा सहज–स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक वातावरण गीता में मिलता है, वैसा अन्यत्र असम्भव है।

गीता में चरित्र–उपदेश का मनोवैज्ञानिक वर्णन मिलता है। 'आत्मबोध' इसका प्रथम सोपान है। 'मैं कौन हूँ? संसार में मेरे जन्म का उद्देश्य क्या है?' इत्यादि प्रश्नों के समाधान के लिए, जागे हुए आत्म–अनात्म के विवेक से आत्मबोध का जो क्रम प्रारम्भ होता है, वही गीता में वर्णित साधनाओं से परिष्कृत होता हुआ वैराग्य, शम, दम, तितिक्षा, उपरति समाधान और श्रद्धा की आध्यात्मिक शक्ति से समर्थ होकर पहले जीवन्मुक्ति और अन्ततः मोक्ष में परिणत हो जाता है।

गीता में चरित्र–निर्माण की साधना का शुभ आरंभ यद्यपि आत्म–बोध कराने वाले परिचय से प्रांरभ होता है, फिर भी उसमें वर्णित समस्त साधना के आचरण–पक्ष पर विशेष बल दिया गया है। उसके बिना तो चरित्र–निर्माण का कार्य आगे नहीं बढ़ सकता है।

गीता में वर्णित समस्त साधनाएँ– चाहे वह चित्त को शुद्ध करने वाली निष्काम कर्मयोग की साधना हो, चाहे वह चित्त को एकाग्र करने वाली भक्तियोग की साधना हो और चाहे वह अपने समस्त अज्ञान रूप आचरण को भङ्ग करने वाली साधना हो, वास्तव में व्यवहार–पक्ष में चरित्र–निर्माण का और परमार्थतः चरित्र के अनुशीलन का ही अनुष्ठान है।

आत्मबोध के बाद हमारा कर्तव्य मार्ग सरल हो जाता है, जिसमें मृत्यु का भय नहीं रहता और अनासक्ति होने पर पतन की कोई आशंका नहीं रहती। उस समय हमारा चरित्र बल तथा मनोबल बहुत ऊँचा हो जाता है। इसी निर्भयता से गीता हमें निष्काम भाव से कर्म करना सिखाती है–

**तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्।**

(3. 19; 25)

गीता में वर्णित चरित्र–निर्माण की साधना में काम और क्रोध नामक दो दुर्गुण अत्यन्त बाधक हैं,

चरित्रवान् को इनसे सदैव सावधान रहना चाहिए (3.37)। इन्द्रिय, मन और बुद्धि- ये तीनों काम के आधार हैं। अतः इनका नियमन भी चरित्र-निर्माण के लिए परमावश्यक है, नहीं तो ज्ञान और विज्ञान दोनों नष्ट हो जाएँगे -

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥

(3. 41)

निष्काम कर्मयोगी भक्त तथा ज्ञानी सभी के लिए काम और क्रोध का त्यागना आवश्यक है (5.23-26)। इनके रहते हुए, लौकिक और पारलौकिक सुख नहीं मिल सकता। काम-क्रोध और लोभ को त्याग कर ही मनुष्य चरित्रवान् बन सकता है (16.21-22)। काम, क्रोध और लोभ से बचे रहने से राग, द्वेष आदि का भाव दूर होता है। इसके अनन्तर अन्तःकरण की प्रसन्नता के साथ-साथ (2.64) वह अपने सहित अपने समाज, जाति तथा राष्ट्र के उद्धार के लिए शास्त्र के अनुकूल जो भी कल्याणकारी आचरण करता है, वही उसका उज्ज्वल चरित्र बन जाता है -

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥

(16. 22)

इन्द्रियों और इनके शत्रुओं को जीतने के पश्चात् भगवान् में विश्वास रखना भी चरित्र का प्रमुख सद्‌गुण है। इससे काम, क्रोध,लोभ,ईर्ष्या, मोह, अभिमान, मद आदि सभी दुर्गुणों से निवृत्ति हो जाती है। इससे मनुष्य कुछ देना अथवा समर्पण करना सीख जाता है। इस प्रकार वह 'मैं' की संकीर्ण भावना से ऊपर उठ जाता है (12.13-14)। समत्व बुद्धिमूलक ज्ञान गीता की चरित्र-साधना का एक असाधारण अङ्ग है, जिसके द्वारा चरित्र के साधक को अपने उद्देश्य की प्राप्ति अथवा संतुष्टि अनायास ही होती रहती है -

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥

(4. 38)

इस प्रकार गीता एक चरित्र-निर्माणकारी ग्रन्थ है। इसमें क्रमशः श्रीकृष्ण के माध्यम से अर्जुन रूपी समस्त मानवता के चरित्र के उत्कृष्टरूप का उपदेश दिया गया है।

-साधु आश्रम, होश्यारपुर।

गीता में अर्जुनविषादनिहित लोकचिन्ता

–डॉ. वीरेन्द्र कुमार अलंकार

कुछ प्रश्न आज भी उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे हैं। रामायण और महाभारत पढ़ते समय इतिहास और काव्यप्रवाह की विचित्र उलझन पाठक के समाने आती है। युधिष्ठिर पर यह प्रश्न आज तक शान्त नहीं हो पाया है कि वे धर्मराज कैसे हैं? द्यूत में अपनी पत्नी को दाव पर लगाने वाला व्यक्ति आदर्श या धर्मराज कैसे माना जाए और यदि वह भी शकुनि या दुर्योधन की भाँति अधर्म का आचरण कर रहा है, तो कृष्ण की क्या विवशता है कि वे युधिष्ठिर के साथ खड़े हैं। पाण्डवों में भी वे अर्जुन के ही सारथी क्यों बने? आखिर अर्जुन के प्रति उनके इस मोह का क्या कारण है?

कदाचित् इसका एक कारण यह है कि अर्जुन केवल योद्धा ही नहीं है, उनमें लोकचेतना भी खूब भरी हुई है। तभी तो जो प्रश्न अर्जुन ने उठाए, वे युधिष्ठिर या भीम नहीं उठा पाए। इसलिए अर्जुन को मोहग्रस्त कहकर उसकी लोकचिन्ता और प्रतिभा को नकारना सर्वथा अनुचित है। बल्कि यह कहना चाहिए कि अर्जुन ही वह व्यक्ति है, जिसने कृष्ण को सारथी से दार्शनिक बना दिया है। जबकि युद्धभूमि की मर्यादा दार्शनिक धरातल पर व्याख्यायित नहीं हो सकती। किन्तु कृष्ण बड़े निपुण हैं, वे जानते हैं व्यावहारिक भूमि पर अर्जुन के प्रश्नों का समाधान सम्भव नहीं है, इसलिए वे अर्जुन के प्रश्नों को दार्शनिक बनाकर समाधान प्रस्तुत करते हैं। जबकि युद्ध आरम्भ हो जाने पर कृष्ण स्वयं केवल लोकव्यवहार का ही सहारा लेते हैं। कृष्ण जानते हैं कि युद्ध अब जरूरी हो गया है और युद्ध का धर्म केवल विजय है। इसीलिए शिखण्डी द्वारा भीष्मवध, असत्यवाक् द्वारा द्रोणवध, निरस्त्र कर्ण का वध और ऊरुप्रहार द्वारा दुर्योधन का वध उन्हें ठीक लगता है।

यह ध्यातव्य है कि अर्जुन के प्रश्नों में लोकचेतना है, कायरता नहीं। इसलिए तद्युगीन परिस्थितियों में अर्जुनविषाद की मीमांसा होनी चाहिए। विषाद के दो प्रमुख कारण माने गये हैं– एक करुणा और दूसरा कायरता।

क. करुणा– परहित की भावना ही करुणा है, जो सत्त्वगुणजन्य है।

ख. कायरता– यह शरीरासक्ति का परिणाम है, जो तमोगुणजन्य है।

अर्जुन का हृदय कायरता से नहीं, बल्कि करुणा से आविष्ट है–

तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान्।
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्॥[1]

भला करुणापूरित हृदय से युद्ध जैसे घोर कर्म में प्रवृत्ति कैसे हो सकती है? इसलिए अर्जुन के

1. श्रीमद्भगवद्गीता 1.27–28

विषाद को अज्ञानजन्य समझना अर्जुन के प्रति अन्याय है। अर्जुन न शरीरासक्त है और न ही भयग्रस्त। अपने बन्धुजनों के विनाश की कल्पना और उनके हित की भावना ही उसकी करुणा में हेतु है। अर्जुन मोहग्रस्त न होकर एक जागरूक योद्धा है, जो युद्ध के परिणाम को दूरदृष्टि से देख रहा है। अर्जुन यह अच्छी तरह जानता है कि युद्ध का हेतु राज्यतृष्णा है और परिणाम है– विनाश। इसलिए वह इस युद्ध में हेतु नहीं बनना चाहता। उसके प्रश्नों में स्वार्थ या मोह न होकर सामाजिक चेतना है। वह स्पष्ट कहता है कि –

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।[2]

अर्जुन के सामने सबसे पहला प्रश्न तो यही है कि अपनी राजसत्ता के लिए अपने परिवार का ही विनाश क्यों। अपने पूर्वजों व परिवार की विनाशलीला होगी, जिससे पूर्वजों की सम्मानपरम्परा समाप्त हो सकती है। क्योंकि कुलक्षय से कुलधर्म नष्ट हो जाता है–

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥[3]

यह प्रश्न भावी पीढ़ी के लिए सदा बना रहेगा कि राज्य के लिए यदि अर्जुन का अपने पितामह, गुरुओं को मारना ठीक है तो किसी के लिए भी अपनी सम्पत्ति (प्रोपर्टी) के लिए पिता या भाई का वध अनुचित कैसे है। ये नितान्त सामाजिक प्रश्न हैं। 'यथा राजा तथा प्रजा' का व्यवहार होता ही है। फिर भाई द्वारा भाई पर होने वाले मुकदमों को क्या सामाजिक मान्यता मिलनी चाहिए? इससे आदर्श और मूल्यों की व्याख्या कैसे हो पाएगी।

अपने परिवार जनों में प्रीति का होना मोहावस्था नहीं है। यदि अपनत्व का बोध मोह है, तो क्या दुर्योधन मोहरहित है? उसे तो युद्धभूमि में केवल शत्रु दीख रहे हैं, जबकि अर्जुन की दशा बिल्कुल विपरीत है, उसे सारे भाई, बन्धु ही दीख रहे हैं। इसलिए विपक्षी सेना में पितामह, भाई–बन्धुओं को देखना मोह नहीं, उसके चरित्र की उदात्तता है। तभी तो अर्जुन को वहाँ युद्ध का कोई निमित्त दिखाई नहीं देता –

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥[4]

अर्जुन इस परिणाम पर पहुँच चुके हैं कि राज्य और भोग इस जीवन के प्रयोजन नहीं हैं। जीवन का प्रयोजन श्रेय की प्राप्ति है। जबकि राज्य और भोग दोनों प्रेय के साधन हैं, श्रेय के नहीं। इस प्रकार विशुद्धहृदय अर्जुन अत्यन्त करुणा से युक्त हो जिस प्रकार के विषाद को प्राप्त होते हैं, वह सात्त्विक विषाद उसे निःश्रेयस् की प्राप्ति में ही प्रवृत्त होने की प्रेरणा देता है।

यह बात स्मरणीय है कि राज्य का भोग और सुख अपने लिए नहीं, अपनों के लिए होता है। पर इस युद्ध में तो अपने ही सामने खड़े हैं –

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥

2. वही, 1.32
3. वही, 1.40
4. वही, 1.31

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥[5]

भले ही दुर्योधन आततायी है, पर इससे मेरा (अर्जुन का) रक्त का सम्बन्ध है। इनकी हत्या से कौन सा सुख मिलेगा–

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥[6]

श्रेष्ठ पुरुष अपने आश्रित जनों, सुहृद्-जनों के लिए ही सुखभोगसामग्री जुटाता है। स्वयं के लिए ही साधनसंग्रह करना तो धर्म की दृष्टि से पाप ही है।

अर्जुन युद्ध का परिणाम जानते थे। कहा जाता है कि महाभारत से भी कदाचित् 1000 वर्ष पूर्व भारत का पतन आरम्भ हो चुका था। कृष्ण इससे बड़े चिन्तित थे। महाभारत में कुछ ऐसे प्रसंग आते हैं, जो उस काल की गिरावट के प्रमाण हैं और यह सच है कि हम उन पर विचार करने में झिझकते हैं–एक सन्दर्भ एकलव्य का है। आज तक यह प्रश्न प्रायः अनुत्तरित ही है कि एकलव्य को विद्या का अधिकार क्यों नहीं था। उस पर गुरुदक्षिणा एक और मार्मिक प्रश्न खड़ा कर देती है। इसी प्रकार कर्ण को झूठ बोल कर क्यों विद्या ग्रहण करनी पड़ी और उसके सूतपुत्र होने पर क्यों शाप मिला? यह घटना ऐसी ही है जैसे किसी प्रतिभाशाली छात्र को विद्यालय में प्रवेश तो मिल गया, किन्तु उसकी जाति (कुल) का पता चलने पर उसका (प्रवेश) ही निरस्त (कैंसिल) कर दिया जाए।

अर्जुन यह समझ चुके थे कि कुलक्षय होने पर जो भी बची-खुची परम्पराएँ हैं, वे भी नष्ट हो जाएँगी, कुलधर्म नष्ट हो जाएगा। यह सच है कि गुरुजनों के प्रति विद्रोह या अनादरभाव तब राजकुल में नितान्त हेय समझा जाता था। इसके बाद अर्जुन का उदाहरण देकर लोग अपने पूर्वजों के प्रति हथियार भी उठाने लग जाएँगे। कुलक्षय से यह कुलधर्म निश्चय ही नष्ट होगा।

यह स्मरणीय है कि महाभारतकाल तक ऋषियों की परम्परा भारत में दिखाई देती है। अनेक ब्राह्मणग्रन्थ और शास्त्र उस युग में लिखे गये हैं। जैमिनि और वेदव्यास महाभारतकाल में ही हुए हैं। पर युद्ध में हुए नरसंहार ने सारी वैदिक-परम्परा को उच्छिन्न कर दिया। इसका परिणाम यह रहा कि फिर हजारों वर्ष तक भारत में ऋषि पैदा नहीं हुआ। ऋषिपरम्परा को जैसे विराम लग गया, आर्षचिन्तन और पद्धति प्रायः विच्छिन्न हो गई और कृष्ण के चले जाने पर धर्म के नाम पर अधर्म का प्रसार निरन्तर बढ़ता चला गया। यही कृष्ण और अर्जुन की सबसे बड़ी चिन्ता थी।

महाभारत में ब्राह्म-बल के साथ साथ क्षात्र-बल का भी भयंकर ह्रास हुआ। क्षत्रियों में आत्माभिमान निरन्तर गिरता चला गया। वे मिथ्याभिमानी पाखण्डियों के आश्रित होने लगे। जो शूरता और आत्माभिमान का मंत्र योगेश्वर कृष्ण ने फूँका था, उनके प्रयाण के पश्चात् लोग उससे विमुख हो गए। भारत रजवाड़ों में बँटने लगा। स्मरण कीजिए उस शर्मसार करने वाली घटना को जब मुहम्मद गजनवी ने सोमनाथ मन्दिर पर चढ़ाई की तो पाखण्ड और अन्धविश्वासों के कारण वह सब कुछ लूट कर ले गया और साथ में ले गया

5. वही, 1.33.35

6. वही, 1.37

सैंकड़ों महिलाओं, लड़कियों को, जिन्हें एक-एक, दो-दो पैसे में बेचा गया। यह परिणाम था युद्ध का। यही परिणाम था क्षत्रियों के कुलधर्म नष्ट होने का। यही चिन्ता थी अर्जुन की-

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥[7]

अर्जुन की एक चिन्ता यह थी कि युद्ध में असंख्य जनहानि होगी, जिससे विधवाओं की बस्ती बस जाएगी और उससे कुल की स्त्रियों के दूषित होने का भय होगा-

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः॥[8]

स्त्री परिवार और सभ्य समाज की धुरी है। इसके सम्मान से समाज जीवित है और अपमान से मृत। इसकी असुरक्षा से समाज में वर्णसंकरता फैल जाएगी। कुलघातक पुरुषों के युद्धकर्मरूपी वर्णसंकरता उत्पन्न करने वाले दोषों से व्यवस्थित जाति (वर्ण) धर्म और कुलधर्म लुप्त हो जाएँगे-

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥[9]

और कुल धर्म का विनाश व मर्यादाओं का विच्छिन्न होना तो साक्षात् नरक ही है -

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवत्यनुशुश्रुम॥[10]

और इसका अनर्थकारी परिणाम होता है- राष्ट्र का विनाश। मनु कहते हैं कि -

यत्र त्वेते परिध्वंसाज्जायन्ते वर्णदूषकाः।
राष्ट्रिकैः सह तद्राज्यं क्षिप्रमेव विनश्यति॥[11]

इस सारी समस्या को देखते हुए अपने ही लोगों को मारने के लिए उद्यत होना तो पाप ही है-

अहो बत महत्पापं कर्त्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥[12]

इससे तो बेहतर है ये धार्त्तराष्ट्र मुझ शस्त्रहीन को ही मार डालें-

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्त्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥[13]

अर्जुन की इस चिन्ता को कृष्ण भी खूब समझते थे, उन्होंने खूब प्रयास भी किया, पर सफलता नहीं मिल पाई। कदाचित् युद्ध को टालना अब असम्भव हो गया था। पर अर्जुन की चिन्ता बड़ी सामयिक लोकपरक है। अतः अर्जुन का विषाद मोहावस्था न होकर उसकी चेतना का उत्कर्ष है॥

– अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग तथा
अध्यक्ष, दयानन्द वैदिक अध्ययन पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

---

7. वही, 1.40
8. वही, 1.41
9. वही, 1.43
10. वही, 1.44
11. मनुस्मृति, 10.61.
12. वही, 1.45
13. वही, 1.46

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्ण और आश्रम

–श्री एल. के. गौड

वस्तुतः सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का मूल वेद है। वेद की सर्वाधिक विवादास्पद ऋचा की व्याख्या में ऋषि दयानन्द ने हस्तक्षेप कर अपनी व्याख्या दी है। यथा–

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते॥[1]

अर्थात् सर्वशक्तिमान् परमेश्वर में बहुत प्रकार का सामर्थ्य है। इस पुरुष (सर्वव्यापक परमात्मा) के मुख अर्थात् मुख्य गुणों से इस संसार में क्या उत्पन्न हुआ? बल, वीर्य, शूरता और युद्ध आदि विद्या गुणों से इस संसार में कौन पदार्थ उत्पन्न हुआ है? व्यापार आदि मध्यम गुणों से किसकी उत्पत्ति हुई है? नीच गुणों से किसकी उत्पत्ति होती है? इन चारों प्रश्नों के उत्तर हैं–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥[2]

इस पुरुष से विद्या सत्यभाषणादि उत्तम गुण और श्रेष्ठ कर्मों से ब्राह्मण वर्ण उत्पन्न हुआ वह इन गुणों से मनुष्यों में उत्तम कहाता है और बल पराक्रम आदि पूर्वोक्त गुणों से युक्त क्षत्रिय वर्ण उत्पन्न किया। खेती, व्यापार और सब देशों की भाषाओं को जानना तथा पशु–पालन आदि मध्यम गुणों से वैश्य वर्ण उत्पन्न हुआ। निम्न गुणों से शूद्र वर्ण उत्पन्न हुआ।[3]

श्रीमद्भगवद्गीता में योगीराज कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों का समूह गुण और कर्मों के विभाग–पूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि–रचनादि कर्म का कर्त्ता होने पर भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू वास्तव में अकर्त्ता ही जान।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥[4]

भगवान् कृष्ण किसी को बलपूर्वक वर्ण में नहीं धकेलते, वे तो उनकी भक्ति और महत्ता अर्थात् गुणवत्ता से ही वर्ण में जाने को कहते हैं, भक्त चाहे तो अपना वर्ण बदल भी सकता है, भक्त योगीराज के पथ का आदरपूर्वक अनुसरण करते हैं–

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥[5]

जिस प्रकार विभागरहित स्थित हुआ भी महाकाश घटों में पृथक्–पृथक् की भाँति प्रतीत होता है, वैसे ही सब प्राणियों में एकीरूप से स्थित हुआ भी परमात्मा पृथक्–पृथक् की भाँति प्रतीत होता है, इसी से देह में स्थित जीवात्मा को भगवान् ने अपना 'सनातन अंश' कहा है–

1. ऋग्वेद, 10/90/11
2. वही, 10/90/12
3. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, सृष्टिविद्या विषय, पृष्ठ 125-126.
4. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/14
5. वही, 4/13

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥[6]

इस दृष्टि से समस्त मानवजाति एक है। कर्म को आधार बना कर भिन्न-भिन्न वर्ण निर्धारित किए गए हैं। महर्षि दयानन्द ने स्मृतिकार मनु के मत का प्रतिपादन किया है कि वर्ण-व्यवस्था गुण-कर्म के अनुसार है, जन्म के अनुसार नहीं। अर्थात् यह अनिवार्य नहीं कि ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण ही हो। यदि ब्राह्मण का पुत्र ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका, या वृत्तियों से अनुदार अथवा नीच रहा तो वह शूद्र भी हो सकता है। यथा-

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥[7]

जो शूद्र कुल में उत्पन्न होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाए। चारों वर्णों में जिस जिस वर्ण के सदृश जो-जो पुरुष या स्त्री हो वह उसी वर्ण में गिनी जावें।[8]

महाभारत के अनुसार ब्राह्मण का कार्य वेद की रक्षा करना, क्षत्रिय का कार्य पृथ्वी पर शासन करना, दण्ड धारण करना और जीवों की रक्षा करना, वैश्य का कार्य व्यापार तथा कृषि-कर्म, शूद्र का कार्य दास बन कर तीनों वर्णों की सेवा करना है।[9]

'श्रीमद्भगवद्गीता' में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास-इन चारों आश्रमों का वर्णन संकेत रूप से माना जा सकता है, यथा परमात्मतत्त्व की इच्छा रखकर ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हैं- **यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति।**[10] जो मनुष्य दूसरों का हिस्सा न देकर स्वयं अकेले ही भोग करता है, वह चोर है- **तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।**[11] जो केवल अपने शरीर के पोषण के लिए ही पकाते हैं, वे पापी लोग तो पाप का ही भक्षण करते हैं- **भुञ्जते ते त्वघं पापाः ये पचन्त्यात्मकारणात्।**[12] इत्यादि पद से गृहस्थ आश्रम का संकेत होता है। अनेक लोग तपस्यारूप यज्ञ करने वाले हैं '**तपोयज्ञाः**'[13] इस पद से वानप्रस्थ आश्रम का संकेत माना जा सकता है। जिसने सब प्रकार के संग्रह का सर्वथा त्याग कर दिया है- '**त्यक्तसर्वपरिग्रहः**'[14] पदों से संन्यास आश्रम का संकेत स्वीकार किया जा सकता है।

इस प्रकार दृष्टिगत कार्य तथा आश्रम-व्यवस्था पर दृष्टि-पथ प्रशस्त होता है।

– संस्कृत-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।

---

6. गीता, 15/7
7. मनुस्मृति, 10/65
8. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2/5/11/10-11
9. महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय-60
10. श्रीमद्भगवद्गीता, 8/11
11. वही, 3/12
12. वही, 3/13
13. वही, 4/28
14. वही, 4/21

गीता में त्रैतवाद

–डॉ. नरसिंहचरण पण्डा

भारत के धार्मिक साहित्य में प्रभाव तथा लोकप्रियता की दृष्टि से भगवद्गीता का स्थान सर्वोपरि है। प्रस्थानत्रयी में उपनिषद्, वेदान्त और भगवद्गीता को भी सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रमाणभूत माना जाता है। उपनिषद् और वेदान्त दर्शन भाषा तथा भावों की क्लिष्टता के कारण जनसाधारण में प्रवेश न कर सके। उनका प्रचार तथा प्रसार केवल विद्वानों तक ही सीमित रहा। इसके विपरीत सरल तथा मधुर भाषा में एक उत्कृष्ट/दार्शनिक ग्रन्थ होने के कारण गीता अधिक लोकप्रिय हुई। गीता को गीतोपनिषद् भी कहा है –

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता गीतामृतं दुग्धं महत्॥

इस प्रकार गीता को उपनिषद् का सार ही माना गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि गीता वेदानुकूल है। गीता के अध्ययन करने से यह पता चलता है कि यह वेद को मान्यता प्रदान करती है, उदाहरणस्वरूप गीता के तृतीय अध्याय में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है कि–

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।[1]

अर्थात् सभी शुभ कर्म वेद से ही उत्पन्न और प्रकट हुए हैं और वेद अविनाशी परमेश्वर का दिया हुआ अमूल्य ज्ञान है। पुनः उन्होंने कहा–

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।[2]
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।[3]

उक्त श्लोकों से अनुमित होता है कि गीता और वेद का घनिष्ठ सम्बन्ध है, तथा वेद को परम प्रमाण मानकर ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समस्त उपदेश दिया है। यह बात श्री अमर स्वामी जी ने अपनी पुस्तक 'गीता और वेद' में कही है। प्रमुख आर्य विद्वान् डॉ. भवानीलाल भारतीय द्वारा लिखित शुद्ध गीता के संम्पादकीय में श्री ईश्वरी प्रसाद जी ने लिखा है– गीता एक महान् ग्रन्थ है, गीता के अनेक स्थलों पर वैदिक सत्यों (सार्वभौम सत्य) को जिस सरस शैली और सरल भाषा में उद्घाटित किया है, वह देखते ही बनता है।[4] श्री अमर स्वामी जी महाराज अपनी पुस्तक 'गीता और ऋषि दयानन्द' में कहते हैं, गीता अवैदिक नहीं है। आर्यसमाज के प्रायः सभी विद्वान् गीता का सम्मान करते हैं, और गीता को मानते रहे हैं, और मानते रहेंगे। पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय जी लिखते हैं कि

1. गीता, 3.15
2. तत्रैव, 16.23
3. तत्रैव, 16.24
4. द्रष्टव्य–शुद्धगीता, लेखक, भवानीलाल भारतीय, संपादकीय भाग।

''गीता के सभी स्थलों को वेदानुकूल सिद्ध नहीं किया जा सकता। हां यह मानना पड़ेगा कि गीता वेदों का मान करती है। गीता के कई श्लोकों को तो वेद-मन्त्रों का भावार्थ अनुवाद कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ यजुर्वेद[5] 40/15=गीता[6] 13/15, यजुर्वेद[7] 40.6=गीता[8]-6/20 आदि। अतः वेद की कसौटी पर गीता का जितना अंश खरा उतरता है वह हमें ग्राह्य है, जितना अंश वेद प्रतिकूल है, वह हमें अमान्य है।''

गीता में सांख्य, योग, वेदान्त इत्यादि के सभी सिद्धान्त पाये जाते हैं। वेदान्त में भी जो परवर्ती अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि के दार्शनिक मतभेद पाये जाते हैं उनके पोषक श्लोक भी गीता में एकाधिक स्थान पर मिलते हैं। इस प्रकार गीता में तीन प्रमुख परस्पर विरोधी **अद्वैतवाद, द्वैतवाद, त्रैतवाद** सिद्धान्त पाये जाते हैं। इसलिये गीता को दार्शनिक दृष्टि से 'त्रिदोष सन्निपात' बताते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने ठीक ही लिखा है- 'उसमें कहीं तो जीव ब्रह्म का एकत्व प्रतिपादित है, कहीं पृथक्त्व देखने में आता है, और कहीं प्रकृति पुरुष का पृथक्त्व माना है। परन्तु इस लेख में सब सिद्धान्तों की पुष्टि न करते हुए केवल (स्वामी दयानन्द का प्रमुख वैदिक सिद्धान्त)'**त्रैतवाद सिद्धान्त**' की यहां पुष्टि की जा रही है।

वेदों में त्रित्ववाद है, अर्थात् - वेद, 'ईश्वर, जीव और प्रकृति की नित्यता का प्रतिपादन करता है।' यह सिद्धान्त वैदिक दर्शन का मूल आधार रहा है ऐसा स्वामी दयानन्द जी मानते हैं। ऋग्वेद में इन तीनों पदार्थों का विभाग इस प्रकार किया गया है कि 'वृक्षरूप प्रकृति भोग्य है, जीव भोक्ता है, परमेश्वर साक्षीमात्र है'।[9] इसी बात को श्वेताश्वतरोपनिषद् (4/6) में भी कहा गया है और इस उपनिषद् में इस मन्त्र के अर्थ को प्रकट करने के लिये मुण्डकोपनिषद् (3/1/1) के श्लोक को ही उद्धृत किया गया है, और उपनिषद् ने अपने शब्दों में मन्त्रों के आशयानुसार उस त्रित्ववाद के सिद्धान्त को इस प्रकार प्रकट किया है।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥[10]

इस प्रकार वेद और उपनिषद् प्रतिपादित यह त्रैतवादी विचारधारा गीता में भी स्पष्ट रूप में उपलब्ध होती है। उदाहरणार्थ, गीता के त्रयोदश अध्याय में कहा गया है- '**पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्**'[11]- पुरुष जीव, प्रकृति के गुणों का उपभोग करता है। इसका आशय यह है कि पुरुष, या जीव तथा प्रकृति ये दो अलग तत्व हैं। पुरुष और प्रकृति दोनों अनादि हैं तथा परमात्मा से भिन्न हैं, यह बात उसी त्रयोदश अध्याय में कही गई है -

---

5. यजुर्वेद, 40.5
6. गीता, 13.15
7. यजुर्वेद, 40.6
8. गीता, 6.20
9. ऋग्वेद, 1.164.20
10. श्वेताश्वतरोपनिषद्, 2.5
11. गीता, 13.21

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्॥[12]

जीव से भिन्न परमात्मा की सर्वोच्च सत्ता का वर्णन इस अध्याय के निम्न श्लोकों में पाया जाता है।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥[13]

यहाँ परब्रह्म को ज्ञेय कहा गया है, जिसको जानने से जीव को अमृत एवं शाश्वत जीवन की प्राप्ति होती है। इसका कोई आदि नहीं है, और वह जो सत् एवं असत् से विलक्षण है।

उपनिषद् में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन जिस शैली में किया गया है, उसी से मिलती जुलती शैली गीता के निम्न श्लोकों में पाई जाती है। वहां लिखा गया कि–

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥[14]

अर्थात् उसके हाथ और पैर सब जगह हैं, उसकी आंखें, सिर और मुख सब ओर हैं, उसके कान सब दिशाओं में हैं, वह सब को आवृत्त करके संसार में ठहरा हुआ है। गीता की यह बात वेद से ली गई है।[15] वहां इस प्रकार कहा गया कि उस एक देव के, जो द्युलोक और पृथिवी लोक का जनक है, चारों तरफ चक्षु हैं, चारों तरफ मुख हैं, चारों तरफ बाहु और पाद हैं। इसका यह मतलब नहीं कि वह स्थूल है। वह सूक्ष्म है, इन्द्रियों का विषय नहीं है, परन्तु फिर भी इन्द्रियों से उसका आभास होता है।[15] गीता के त्रयोदश अध्याय में इसी आशय से कहा है कि उसका अपना कोई इन्द्रिय नहीं है, फिर भी सब इन्द्रियों का आभास उसमें विद्यमान है, वह अनासक्त है, फिर भी सबको (आसक्त की तरह) सम्भाले हुए है, वह प्रकृति के (सत्त्व, रज, तम) गुणों से रहित है, फिर भी गुणों का भोक्ता है और वह प्राणियों के बाहर है और अन्दर भी, वह अचल है और चलायमान भी, वह इतना सूक्ष्म है कि उसे जाना नहीं जा सकता, अर्थात् वह अविज्ञेय है।[16]

पुनः इस त्रयोदश अध्याय के अगले श्लोक में उनको प्राणियों का भर्त्ता, उनका विनाशक, उत्पन्नकर्त्ता, ज्योतियों का ज्योति तथा अन्धकार से परे बताया गया है।[17] इस तरह ब्रह्म की परम सत्ता की व्याख्या इसी अध्याय में भी हुई है–**'परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः**[18] – अर्थात् जीव के अतिरिक्त 'परमात्मा' नाम का एक परमपुरुष है। इससे स्पष्ट है कि **गीता ने यहां पुरुष, प्रकृति, परमात्मा, इन तीनों तत्त्वों का प्रतिपादन करते हुए 'त्रैतवाद' का समर्थन किया है।**

वेद प्रतिपादित इस त्रैतवादी विचारधारा के दर्शन हमें गीता के पंचदश अध्याय के निम्न श्लोकों में भी होते हैं, जहां स्पष्टतया जीव, ईश्वर और

---

12. गीता, 13.19
13. तत्रैव, 13.12
14. तत्रैव, 13.13
15. ऋग्वेद, 10.1.3
16. गीता, 13.14, 13.15
17. तत्रैव, 13.16
18. तत्रैव, 13.17

प्रकृति को अनादि स्वीकार करते हुये तीनों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है।[19]

गीता के अनुसार इस लोक में दो पुरुष हैं- एक नश्वर (प्रकृति) और दूसरा अनश्वर (जीव)। ये सब भूत पदार्थ (जिनका मूल कारण प्रकृति है) 'क्षर' कहलाते हैं तथा अक्षर जीव कूटस्थ आत्मा कहलाता है। परन्तु इन दोनों से भिन्न उत्तम पुरुष एक अन्य है, जिसे परमात्मा कहते हैं, जो इन तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर इनका भरण पोषण करता है।[20] इस वर्णन की विशेषता यह है कि यहां तीनों अनादि सत्ताओं को एक ही 'पुरुष' संज्ञा से सम्बोधित किया गया है, फिर भी उसका पारस्परिक वैभिन्न्य बताकर 'त्रैतवादी' सिद्धान्त की पुष्टि की गई है।

गीता में उक्त इन दोनों प्रसङ्गों की सूक्ष्म आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी मौलिक विचारधारा क्या रही होगी। त्रयोदश अध्याय में '**हृदि सर्वस्य विष्ठितम्**'[21], पंचदश अध्याय में '**सर्वस्व चाहं हृदि सन्निविष्टः**'[22] और अष्टादश अध्याय में भी '**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**'[23] आदि श्लोकों में सब प्राणियों के हृदय में स्थित ईश्वर का वर्णन पृथक् से हुआ है।

अतः इन सब उद्धरणों से स्पष्ट है कि जहाँ प्रचलित टीकाओं के अनुसार सांख्य, प्रकृति तथा पुरुष इन दो तत्वों को मानता है, वहां गीता सांख्य में प्रचलित दो तत्वों से एक कदम आगे जाकर योग की तरह प्रकृति पुरुष तथा ईश्वर इन तीन तत्वों को मानती है। आधुनिक विचारधारा में सांख्य को निरीश्वरवादी, सांख्य और योग को सेश्वरवादी सांख्य कहा जाता है। गीता सेश्वरवादी सांख्य है और गीता का यह सेश्वरवादी सांख्य, प्रकृति, पुरुष तथा ईश्वर इन तीनों को मानता है। अतः निःसन्देह हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि गीता में त्रैतवादी सिद्धान्त की पुष्टि की गई है।

– उपाचार्य, संस्कृत, विश्वेश्वरानन्द-विश्वबन्धु-संस्कृत-भारतभारती-अनुशीलन-संस्थान, साधु आश्रम, पंजाब-विश्वविद्यालय, होशियारपुर।

19. तत्रैव, 13.22
20. तत्रैव, 15.16, 15.17
21. तत्रैव, 13.17
22. तत्रैव, 15.15
23. तत्रैव, 18.61

श्रीमद्भगवद्गीता के सन्दर्भ में –

ईश्वरावतार

–डॉ. जयनारायण शर्मा

परमेश्वर के अवतार लेने अथवा जन्मग्रहण करने के सम्बन्ध में विचारकों में मतभेद पाया जाता है। कुछ विचारकों के अनुसार परमशक्ति निराकार होते हुए भी परिस्थितिविशेष में साकाररूप भी धारण करती है, तथा अन्य की मान्यता है कि परमशक्ति निराकार ही है, वह साकार रूप धारण नहीं करती। क्योंकि उसके द्वारा साकाररूप धारण करने से उसकी सर्वज्ञता सर्वव्यापकता सर्वशक्तिमत्ता आदि गुण समाप्त हो जाते हैं तथा वे अल्पज्ञ और एकदेशीय जनसाधारण जैसे बन जाते हैं। परन्तु चौथे अध्याय के सातवें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण परमशक्ति द्वारा अवतार लिये जाने का स्पष्टतः उल्लेख करते हुए कहते हैं–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थात् – हे अर्जुन! जब-जब धर्म का ह्रास और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं (परमशक्ति) अपने को उत्पन्न करता हूँ अर्थात् प्रकट करता हूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण के इस वचन से हमें न केवल इस बात का ज्ञान होता है कि परमशक्ति भगवान् का अवतरण होता है, अपितु हम इस तथ्य से भी परिचित होते हैं कि किन परिस्थितियों में वह परमशक्ति अपने को साकार रूप में प्रकट करती है। भगवान् का अवतरित होना किसी कालविशेष या स्थानविशेष से सम्बन्ध न रखकर परिस्थिति-विशेष से सम्बन्ध रखता है। परिस्थितिविशेष के कारण उन्हें जिस रूप की आवश्यकता होती है, वे वही रूप धारण करके प्रकट हो जाते हैं, चाहे वह नररूप हो या फिर नरसिंहरूप।

ईश्वरावतार का उद्देश्य –

गीता के इसी अध्याय के आठवें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण परमशक्ति के अवतरण के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि– जब दुष्ट लोग सज्जनों को कष्ट देते हैं, अत्याचार करते हैं, उनके सत्कार्यों में विघ्न डालते हैं जिससे धर्म की हानि होती है, तब उन की रक्षा करने तथा दुष्ट लोगों का विनाश करके धर्म की पुनः स्थापना के लिए परमशक्ति अपने को साकार रूप में प्रकट करती है।

इस में परमशक्ति द्वारा अपने को साकार रूप में प्रकट करने के मुख्यतः तीन उद्देश्यों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया गया है। प्रथम है सज्जनों की रक्षा करना, दूसरा है दुष्टजनों का संहार करना और तीसरा है सज्जनों को सत्कार्य

करने हेतु प्रोत्साहित करके धर्म की स्थापना करना।

अब प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं तथा संसार में आकर सांसारिक कर्म करते हैं तो वे अपनी सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता आदि छोड़ अल्पज्ञ एवं एकदेशीय होने तथा कर्म के फल भोगने के बन्धन में पड़ जायेंगे, जो उनके ईश्वरत्व होने में बाधक है।

इन सभी प्रश्नों का उत्तर पाने एवं परमशक्ति के प्रकटीकरण तथा कर्म की रहस्यमयता को समझने के लिए हमें इसी अध्याय के नौवें श्लोक पर दृष्टिपात करना पड़ेगा, जहां श्रीकृष्ण ने अपने विचार स्वयं प्रकट करते हुए कहा है कि- हे अर्जुन ! मेरा जन्म लेना तथा कर्म करना दिव्य अर्थात् अलौकिक हैं। इस बात को जो व्यक्ति यथार्थ रूप से जान लेता है, वह अपने इस भौतिक शरीर को त्यागने (मृत्यु) के पश्चात् फिर जन्म नहीं लेता। वह मुझ (ईश्वर शक्ति) में मिल जाता है। अपने उपर्युक्त वचन में श्रीकृष्ण ने भगवान् के जन्म लेने, प्रकट होने तथा कर्म करने को दिव्य कहा है। अब यहां फिर प्रश्न उठता है कि यह दिव्यता अर्थात् अलौकिकता क्या है?

इसके उत्तर में इसी अध्याय के छठे श्लोक पर विचार करना पड़ेगा। वहां श्रीकृष्ण इस प्रकार कहते हैं-

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

अर्थात्- मैं परमात्मा जन्मरहित, विनाश-रहित, विकार रहित और सभी जड़-चेतन पदार्थों का एक मात्र स्वामी होकर भी अपनी प्रकृति को अपने अधीन रख कर अपनी शक्ति से जन्म लेता हूँ, प्रकट होता हूँ। इस श्लोक पर गम्भीर रूप से विचार करते हुए हमें इस बात का ज्ञान होता है कि भगवान् का जन्म साधारण जीवों के जन्म के समान नहीं है। वह सभी जड़-चेतन पदार्थों के स्वामी होकर भी साधारण जीव का रूप धारण कर लेते हैं, साधारण मनुष्य जैसा व्यवहार करते हैं। विरोधी गुण भी इनमें सामंजस्य स्थापित करते रहते हैं। यही भगवच्छक्ति की दिव्यता अथवा अलौकिकता है। परमशक्ति का प्रकट होना तथा कर्म करना वास्तविक रूप में साधारण मनुष्य जैसा न होकर विशेष प्रकार का होता है। चाहे वह आपातत: साधारण मनुष्य जैसा दिखाई देता है।

हम इस बात को इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि भगवान् साधारण जीवों के समान जन्म नहीं लेते। साधारण जीवों का जन्म तो पूर्व जन्मों में किये शुभ एवं अशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए ही होता है। परन्तु भगवान् तो सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक, कर्तुम्-अकर्तुम्-अन्यथाकर्तुम्-शक्ति से सम्पन्न हैं। जन्म तथा मृत्यु से अतीत हैं। उनका कोई आदेष्टा नहीं है। कर्म तथा संस्कार का बन्धन भी उन पर अपना प्रभाव नहीं रखता। उनको जन्म लेने के लिए किन्हीं अन्य साधनों की भी आवश्यकता नहीं है। वे स्वयं सब के कर्ता, भर्ता और हर्ता हैं तथा सभी जड़-चेतना पदार्थों

की उत्पत्ति के मूलकारण एवं स्वामी हैं। भूत, वर्तमान तथा भविष्य के सभी कर्म उनके अधीन हैं। किसी योनिविशेष से जन्म लेकर प्रकट हों, यह भी उनके लिए कोई बाध्यता नहीं है। उनका प्रकट होना सर्वथा उनकी अपनी इच्छा के अधीन है। वे वस्तुतः जन्म नहीं लेते हैं, अपितु जन्म लेते हुए भासमान होते हैं। अपनी इच्छा से जैसा चाहें वैसा अवतार-शरीर प्रकट कर लेते हैं। उनका यह अवतार-शरीर पृथ्वी आदि पंचमहाभूतरूपी प्राकृत उपादानों से बना हुआ नहीं होता है। वह दिव्य, चिन्मय, प्रकाशमान्, शुद्ध तथा अलौकिक होता है। उनके प्रकट होने में उनकी इच्छा ही सर्वोपरि है और वे अपनी माया को अधीन करके, न कि माया के वशवर्ती होकर, योग शक्ति से नर-नरसिंहादि रूपों में लोगों पर दया करके प्रकट हो जाते हैं। वे अपनी विविध लीलाओं एवं आश्चर्य-जनक कर्मों से अपनी ओर आकृष्ट करने दर्शन, स्पर्श, भाषण और उपदेशों के द्वारा मार्गदर्शन करने एवं सुख-शान्ति प्रदान करने, अपनी दिव्य लीलाओं के श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण के द्वारा भक्तजनों के पापों का नाश करने तथा संसार में दुर्जनों का संहार करके धर्म की स्थापना के लिए जन्मधारण की लीला करते हैं।

उनके इस प्रकार से साकार रूप धारण एवं कर्मों को साधारण मनुष्य के जन्म तथा कर्म के समान देख कर उनको साधारण मनुष्य न समझ कर अजन्मा, अनादि, अनन्त सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमेश्वर समझना ही भगवान् के जन्म को दिव्य समझना है। जो व्यक्ति भगवान् के जन्म की दिव्यता इस प्रकार से समझ लेता है, वह भगवान् में परम श्रद्धा एवं प्रेम होने के कारण निरन्तर उनका चिन्तन करता है, अनन्य चिन्तन द्वारा वह ज्ञानवान् व्यक्ति सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। इस तथ्य का उद्घाटन गीता के दसवें अध्याय के तीसरे श्लोक में स्वयं भगवान् ने वर्णित किया है।

भगवान् के जन्म की दिव्यता के साथ-साथ उनके कर्म की दिव्यता को भी अवगत करना परमावश्यक है। गीता के अध्याय 3. 22-23 में श्रीकृष्ण कहते हैं-

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

अर्थात्- हे अर्जुन! तीनों लोकों में कोई भी ऐसा कर्म नहीं है, जिसे मुझे करने की आवश्यकता है तथा कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जो मुझको प्राप्त नहीं है। मुझे सभी पदार्थ स्वतः ही प्राप्त हैं। फिर भी मैं कर्म करता हूँ। यदि मैं आलस्यरहित होकर कर्म न करूँ, कर्म करना छोड़ दूँ, तो लोग आचरण का अनुकरण कर कर्म करना छोड़ देंगे और इससे लोग भ्रष्ट हो जायेंगे। यहां श्रीकृष्ण के कथन का तात्पर्य है कि वे सृष्टि-रचना और अवतार ग्रहण द्वारा जो कर्म करते हैं, वे केवल लोकहित के लिए ही करते हैं ताकि लोगों में कर्म करने की प्रवृत्ति बनी रहे।

भगवान् समस्त कर्म करते हुए भी कर्तापन का भाव न रखने के कारण वास्तव में उन कर्मों के न करने वाले होते हैं और इस लिए बन्धन से मुक्त रहते हैं। इन कर्मों के फल की प्राप्ति में भी उनकी किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती है। भगवान् जो भी कर्म करते हैं, वह लोक-कल्याण के लिए ही होता है। वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के अधिष्ठाता होते हुए भी सर्वसाधारण के साथ प्रेमपूर्ण एवं समता का व्यवहार करते हैं। वे किसी के प्रति द्वेषभाव नहीं रखते-

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न मे प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गी. 9. 29.)

अपने प्रिय एवं सच्चे भक्तों के योगक्षेम को स्वयं चलाते हैं-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गी. 9.22)

वे भक्ति में लीन अपने उपासकों को दिव्यज्ञान प्रदान कर उनके अज्ञान को नष्ट कर मोक्ष प्रदान कर देते हैं-

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तान् येन मामुपयान्ति ते॥

(गी. 10. 10; 11)

और फिर ईश्वर में दत्तचित्त वाले अपने अनन्य भक्तों को भगवान् मृत्युरूपी संसार-सागर से शीघ्र ही पार उतार देते हैं –

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गी. 12. 7.)

इस प्रकार भगवान् के सभी कर्म अहंकार, आसक्ति, कामनादि दोषों से सर्वथा मुक्त, निर्मल, लोकहित एवं धर्म, नीति, प्रेम, भक्ति आदि का जगत् में प्रचार करने के लिए ही होते हैं। इन सभी कर्मों को करते हुए भी भगवान् का वास्तविक रूप में इनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता है। इस तथ्य को भली प्रकार से समझ लेना, इसमें तनिक भी आशंका या विपरीत भावना न रखकर पूर्ण विश्वास रखना ही भगवान् के कर्मों को दिव्य समझना है।

– गली नं.–5, गौतम नगर, होश्यारपुर।

गीतामृतम्

–डॉ. (श्रीमती) सुशवसिंह

"गीता सब सुखों की नींव, सिद्धान्त रत्नों का भण्डार अथवा नवरस रूपी अमृत से भरा हुआ सागर है, खुला हुआ परमधाम और सब विद्याओं की जन्मभूमि है।"

– संत श्री ज्ञानेश्वर

श्रीमद्भगवद्गीता का माहात्म्य वाणी द्वारा वर्णन करने का सामर्थ्य किसी में नहीं है। गीता में चारों वेदों का सार वर्णित है। इसका आशय इतना गम्भीर है कि आजीवन अभ्यास करने पर भी उसको आद्योपान्त समझना अत्यन्त कठिन है। इसका प्रत्येक श्लोक अपने अन्दर समुद्र की भांति विभिन्न रत्नरूपी भावों को समेटे हुये है और जितना भी इसे समझने एवं मनन करने का प्रयत्न करते हैं उतने ही परम रहस्य खुलते चले जाते हैं और फिर भी अंत नहीं आता। श्री वेदव्यास जी ने कहा है कि –

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

गीताशास्त्र पर समस्त मानवजाति का अधिकार है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी को इसके पठन-पाठन का पूरा अधिकार है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी स्वयं कहा कि जो कोई भी चाहे वह स्त्री अथवा पुरुष हो या पापयोनि में स्थित जीव हो भगवान् के परायण होकर परमगति को प्राप्त होते हैं। अतः परमात्मा की प्राप्ति में सभी का पूर्ण अधिकार है। कुछ लोग समझते हैं कि गीता तथा अन्य आध्यात्मिक ग्रन्थ वृद्धावस्था में ही पढ़े जाने चाहियें तथा केवल संन्यासियों को ही पढ़ना चाहिये। परन्तु यह केवल उनकी संकुचित बुद्धि का ही प्रतीक है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वह अपने सामर्थ्यानुसार बालकों एवं बालिकाओं को श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक अर्थ एवं भाव सहित गीता का अध्ययन करें तथा करवायें। क्योंकि गीता एक ऐसा शास्त्र है जो जीवन की विभिन्न समस्याओं का अनायास ही समाधान करता चला जाता है तथा मानस-गङ्गा की शुद्ध, निर्मल जलधारा के समान स्वयं ही शांत हो निर्बाध गति से आगे बढ़ता जाता है। महाभारत के युद्ध में कौरव कलुषित बुद्धि के प्रतीक थे जो युद्ध के नियमों को एक ओर रखकर येन-केन- प्रकारेण युद्ध जीतना चाहते थे। दूसरी ओर पाण्डव जो शुद्ध बुद्धि के प्रतीक थे और नियमानुसार युद्ध करने के लिये आगे बढ़ना चाहते थे। शत्रुसेना में अपने सभी सगे-सम्बंधियों को देखकर जब अर्जुन करुणायुक्त व्याकुल नेत्रों वाला विषादयुक्त होकर युद्ध से विरत होकर जिसने अपना गाण्डीव

तक भूमि पर रख दिया था तब श्रीकृष्ण उसको विभिन्न प्रकार से समझा कर, उसका मोहभंग करके युद्ध के लिये तैयार कर रहे थे। उस समय अर्जुन के हृदय में विभिन्न शंकाएं थीं, उनका वह समाधान चाहते थे। अर्जुन यह अच्छी तरह से जानता था कि यह मन अत्यन्त चंचल है, इसको एक क्षण के लिये भी स्थिर करना असम्भव है, जिसे चाहकर भी वश में नहीं कर पा रहा है –

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

भगवान् श्रीकृष्ण इसका समाधान अर्जुन को बताते हुये कहते हैं कि –

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

हे अर्जुन! निः सन्देह मन अत्यन्त ही चंचल है और इसको वश में करना भी अत्यन्त कठिन है, परन्तु कठिन से कठिन कार्य को भी पूर्ण करने का कोई न कोई उपाय होता ही है अतः इस मन को वश में करने का उपाय अभ्यास और वैराग्य है। अभ्यास के लिये तो यहां तक कहा गया है कि **'करत-करत अभ्यास से जड़मति होत सुजान'**। अतः अभ्यास से मन को तो वश में किया जा सकता है।

व्यक्ति अपनी मृत्यु से सर्वाधिक भयभीत होता है। यह जानते हुये भी कि मृत्यु एक कटु सत्य है वह उसे झुठलाना चाहता है परन्तु जब ईश्वर के अवतार भी इस मृत्यु से नहीं बच सके तो फिर अन्य प्राणियों का तो कहना ही क्या? श्रीकृष्ण इस समस्या का समाधान सहजता से करते हुये कहते हैं कि –

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

अर्थात् जिस व्यक्ति का जन्म हुआ है उस व्यक्ति की मृत्यु निश्चित है और जिस व्यक्ति की मृत्यु हुई है उसका जन्म निश्चित है। इस कारण जिस विषय में तुम कुछ कर नहीं सकते उस विषय में दुःखी होना व्यर्थ है। यह तो एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। जैसे उपवन में बीज से अंकुर प्रस्फुटित होकर शनैः शनैः पौधा बन जाता है, समय आने पर उसमें फूल एवं फल लगते हैं और अंत में धराशायी हो जाता है उसी प्रकार यह मनुष्य का शरीर है। प्राणी के इस शरीर में जैसे शैशवावस्था, कुमारावस्था, यौवनावस्था, वृद्धावस्था आती है उसी प्रकार देह का अन्त भी होता है। ये समस्त नितान्त स्वाभाविक प्रक्रियाएं हैं। फिर इसमें हताश, निराश या दुःखी होने की क्या आवश्यकता है ?

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

यह तो ऐसा समझना चाहिये जैसे-हम पुराने जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र धारण कर लेते हैं, उसी प्रकार हमारी यह आत्मा भी रोगयुक्त जीर्ण-शीर्ण शरीर को त्याग कर नये शरीर में प्रवेश कर लेती है। यह भी सत्य है कि

जो व्यक्ति इस आत्मा को मृत अथवा हन्ता समझता है वह भी इस आत्मा के विषय में तनिक भी नहीं जानता क्योंकि यह आत्मा न तो कभी मरती है, न किसी को मारती है। यह तो परमात्मा का अंश है अतः इस आत्मा को कोई भी अस्त्र-शस्त्र भेद नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता और वायु सुखा नहीं सकती है। अतः यह आत्मा तो अजर-अमर है। मृत्यु के पश्चात् कर्मानुसार दूसरा चोला धारण कर लेती है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि तुमने और तुम्हारे सम्बंधियों ने न जाने कितनी बार शरीर धारण किया होगा और न जाने कितनी बार मृत्यु का ग्रास बने होंगे। अतः इन सब की चिन्ता छोड़ तुम अपने कर्त्तव्य का पालन करो यही धर्म है।

श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाने का प्रयास करते हुये कहते हैं कि हे अर्जुन! कर्म करने में ही तेरा अधिकार है तुम उसे ही करो, जहां तुमने फल के विषय में विचार किया तुम चिन्तित हो जाओगे, सफलता पर प्रसन्नता और असफलता पर दुःख प्रकट करने लगोगे। तुम इन सबसे ऊपर उठ जाओ, यही तुम्हारे लिंये उचित रहेगा। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जब-जब पृथ्वी पर अत्याचार बढ़ने लगते हैं और सज्जन उनसे पीड़ित होने लगते हैं, तब-तब मैं स्वयं ही इस पृथ्वी से अत्याचारियों के विनाश हेतु अवतार लेता हूँ। इस प्रकार श्रीकृष्ण द्वारा विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने के उपरान्त अर्जुन सहर्ष, संशयरहित होकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके युद्ध के लिये तत्पर हो जाता है और कहता है कि-

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः,
त्वमस्य विश्वस्य परंनिधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम,
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप॥

इस प्रकार अपना कल्याण चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिये यह उचित है कि वह श्रद्धा-भक्ति से गीता का अध्ययन एवं मनन करे। जो व्यक्ति इस प्रकार का कार्य करते हैं उनके हृदय में नित्य नये-नये भावों का प्रस्फुरण होता रहता है। शुद्ध अन्तः करण से वे ईश्वर की कृपा का रसास्वादन करते हुये परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं।

-द्वारा, डॉ. वी. आर. बी. सिंह, 398, सिविल लाइन्स,
हलवर्ग हस्पताल तथा रिसर्च इन्स्टीच्यूट, मुरादाबाद (उ. प्र.)

गीता का जीवन में अनुकरण करें

–श्री कृष्णचन्द्र टवाणी

गीता तो प्रत्येक परिवार में उपलब्ध है और गीता का अध्ययन भी नियमित रूप से अधिकांश परिवारों में, संस्कृत विद्यालयों में एवं धार्मिक स्थानों तथा मंदिरों, आश्रम में होता रहता है। प्रतिवर्ष गीताजयंती के अवसर पर गीता श्लोक-प्रतियोगिता का आयोजन भी स्कूलों में तथा अनेक संस्थाओं द्वारा किया जाता है। गीता पठन-पाठन एवं गीता के श्लोकों को कंठस्थ करके सुमधुर वाणी में पाठ करने का प्रचलन भी वर्तमान समय में पहले से ज्यादा हो रहा है। यह सब गीता के प्रति हमारे बढ़ते लगाव का द्योतक है।

किन्तु गीता के उपदेशों का जीवन में अनुकरण बहुत कम हो रहा है। काश जितना गीता का अध्ययन तथा प्रतियोगिताएँ आयोजित हो रही हैं उतना ही इसके उपदेशों का व्यवहार में पालन होवे तो आज हमारे जीवन में जो तनाव है, समाज में जो हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ व्याप्त हैं उनका स्वत: ही निराकरण हो सकता है। तो आओ हम गीता का पाठ करने के साथ-साथ उसके श्लोकों का भावार्थ भी अच्छी तरह समझकर उसकी शिक्षाओं का जीवन में अनुकरण करने की पूरी कोशिश करें तभी हम सच्चे अर्थों में गीता से जुड़ सकते हैं। गीता के अध्ययन के साथ-साथ उस पर चिंतन मनन करना भी बहुत जरूरी है। गीता को शास्त्र की संज्ञा प्रदान करते हुए कहा है- ''**गीता सुगीता कर्त्तव्या।**'' गीता भली प्रकार मनन करके हृदय में धारण करने योग्य है। गीता का सारांश इस श्लोक से प्रकट होता है कि –

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्,
एको देवो देवकीपुत्र एव।
एको मंत्रस्तस्य नामानि यानि,
कर्माप्येको तस्य देवस्य सेवा॥

अर्थात् एक ही शास्त्र है जो देवकीपुत्र भगवान् ने श्रीमुख से गायन किया, वह है- गीता। एक ही प्राप्त करने योग्य देव है, उस गायन में जो सत्य बताया-आत्मा। सिवाय आत्मा के कुछ भी शाश्वत नहीं है। उस गायन में उन महायोगेश्वर ने क्या जपने के लिए कहा? ओम्! अर्जुन ओम् अक्षय परमात्मा का नाम है। उसका जप कर और ध्यान मेरा धर। एक ही कर्म है- गीता में वर्णित परमदेव, एक परमात्मा की सेवा। उन्हें श्रद्धा से अपने हृदय में धारण करो।

गीता का संदेश शाश्वत है –

चाहे भूतकाल, वर्तमान काल या भविष्य काल हो गीता का संदेश हर काल में समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। आज मानव जीवन में अनेक समस्याएँ हैं तनाव हैं, भय है इन सब समस्याओं का समाधान गीता में है। मानवमात्र के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शिका तथा शाश्वत है- गीता। आज सर्वत्र नेतृत्त्व का संकट है। इस संकट ने नैतिक मूल्यों का ह्रास कर दिया है। दिव्य मूल्यों की पुनर्स्थापना गीता द्वारा बताये मार्ग से ही संभव है। विश्व-कल्याण यदि किसी प्रकार से संभव है तो वह गीता के मार्ग का अनुसरण करने से ही हो सकता है। गीता हमें सिखाती है कि सुख-दु:ख

में एक समान रहें। गीता ही आत्म-कल्याण का सर्वश्रेष्ठ साधन है देखिये-

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥[1]

जो पुरुष शत्रु-मित्र में और मान-अपमान में सम है तथा सर्दी-गर्मी और सुख-दुखादिक द्वन्द्वों में सम है और संसार में आसक्ति से रहित है तथा जो निंदा-स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है, अर्थात् ईश्वर के स्वरूप का निरन्तर मनन करने वाला है एवं जिस किसी प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान में ममता से रहित है वह स्थिर बुद्धिवाला, भक्तिमान् पुरुष मेरे को प्रिय है। मानव का यही कर्त्तव्य है कि वह अपना कार्य भली भांति करें उसके फलों के प्रति विचार नहीं करें। गीता में कहा है कि तू कर्मों के फलों की वासना वाला मत हो तथा तेरे कर्म न करने में भी प्रीति न हो-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥[2]

निश्चय ही गीता एक सर्वकल्याणकारी शाश्वत शास्त्र है। आवश्यकता है इसके अध्ययन, मनन के साथ-साथ इसको व्यवहार में लाने की। इस सम्बन्ध में जगद्गुरु शंकराचार्य जी ने लिखा है - जिसने गीता का थोड़ा-सा भी पाठ कर लिया, गंगाजल की एक बूंद का भी पान कर लिया तथा जिसने श्रीकृष्ण की एक बार भी पूजा कर ली, उसके पास यमदूत कभी नहीं आते। अरे मूढ़मति! गोविन्द को भज, गोविन्द का भजन कर। भगवान् एकमात्र जगद्गुरु है और गीता ज्ञान ही गुरु-ज्ञान है। इसे पाने के लिए नित्य गीता का पाठ करना चाहिए। गीता भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारबिन्द से निकली आशीर्वादात्मक वाणी का प्रसाद (गुरु प्रसाद) है।

गीता-मनीषी स्व. जयदयाल जी गोयन्का का कहना है कि- शास्त्रों का अवलोकन और महापुरुषों के वचनों का श्रवण करके मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि संसार में श्रीमद्भगवद्गीता के समान कल्याण के लिए कोई भी उपयोगी ग्रंथ नहीं है। गीता में ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि जितने भी साधन बतलाये गये हैं उनमें से कोई भी साधन अपनी श्रद्धा, रुचि और योग्यता के अनुसार करने से मनुष्य का शीघ्र कल्याण हो सकता है। यह एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है।

अतः निष्कर्ष यही है कि गीता संपूर्ण वेदमयी है, मनुस्मृति सर्वधर्ममय है। गंगा सर्व-तीर्थमयी है तथा भगवान् विष्णु सर्वदेवमय हैं। जो गीता का पूरा एक श्लोक, आधा श्लोक, एक चरण अथवा आधा चरण भी प्रतिदिन धारण करता है वह अंत में मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

– महासचिव ज्ञानमंदिर, मदनगंज-किशनगढ़ (राज.) 305801

---

1. गीता, 12.18-19.

2. गीता, 2.47.

मुझे मुक्ति चाहिये ?

–श्रीमती विद्या सारस्वत

"मैं राहुल खन्ना जो भी कहूँगा सच कहूँगा..... कठघरे में खड़ा गवाह अभी इतना ही कह पाया था कि आगे के शब्द उसके होठों में ही जैसे अटक कर रह गये और आगे बढ़ा हुआ हाथ उसने तुरन्त पीछे खींच लिया, मानों बिजली की करेन्ट लगी हो, क्योंकि अचानक नारीकंठ से फूटी पुकार की प्रतिध्वनि समस्त वातावरण में गूँज उठी।"

"बस करिये। अब और नहीं सहा जाता मुझसे। मुझे मुक्ति चाहिये। जज साहब अब मुझे छुटकारा दिलाइये इस बन्धन से! मेरा दम घुटा जा रहा है। अब और नहीं सहन कर सकती सदियों से मेरी छाती पर लादे जाने वाले श्वेत चोले में छिपे, झूँठ के इन पत्थरों के भार को।"

कोर्ट में उपस्थित सभी लोगों की निगाहें भी उसी ओर जा टिकीं। पर आश्चर्य, उस गवाह के अतिरिक्त वहाँ आस-पास भी अन्य कोई नहीं था और तो और स्वयं जज भी मूर्तिवत् बैठे, भौचक्के से उसी ओर टकटकी लगाये देखे जा रहे थे। आखिरकार उन्होंने अपने को संभाला और संयत स्वर में बोले, "देवी आप कौन हैं? क्या कष्ट है आपको? सामने आकर स्पष्ट करें।" जनसमूह से खचाखच भरे कोर्ट में ऐसा सन्नाटा शायद ही किसी ने पहले कभी देखा हो। अजीब से रहस्य एवं भय की छाया हर व्यक्ति के चेहरे पर स्पष्ट दिखाई दे रही थी। जज ने अपना कथन पूरा किया ही था कि पुनः वही स्त्री स्वर गूँज उठा।

"मुझे अपना परिचय देने की आवश्यकता नहीं। समस्त देशवासी मुझे अच्छी तरह जानते हैं। मुझे कष्ट क्या है? आप मेरा कष्ट जानना चाहते हैं? धृष्टता के लिये क्षमा चाहूँगी, मैं आपसे पूछती हूँ कि आज तक न जाने कितने बल्कि यों कहना चाहिये कि अनगिनत जघन्य अपराध करने वाले तथा पूर्णतः निर्दोष लोगों ने भी मेरे सीने पर हाथ रखकर सच बोलने की शपथ ली है। क्या किसी ने भी कभी बोला है कि "मैं सच नहीं कहूँगा, सच के सिवा सब कुछ कहूँगा?" सच्चे झूँठे सभी ने वही शब्द कहे हैं कि "जो कुछ कहूँगा, सच कहूँगा" आदि।

"अब आप ही बताइये, क्या वह सभी सच्चे थे? क्या ऐसा संभव है? नहीं न?" हालाँकि हर किसी ने अपने को निर्दोष प्रमाणित करने का जी-जान से प्रयास किया था। इन सभी के सच बोलने का दावा करने वालों में से न जाने कितने सजा पाते रहे हैं, पाते रहेंगे? आजीवन कारावास भी और कितने ही फाँसी के तखते पर लटका दिये जाते हैं? फिर भी, मैं पूछती हूँ फिर भी क्यों, "यह", मैं गीता की शपथ लेकर कहता हूँ, आदि कहलाने की क्रिया सदियों से चलती आ रही है?" इसकी निरर्थकता का सत्य जानते हुये भी आप जैसे ज्ञानी एवं विद्वान् किसे छल रहे हैं? अपने को ही तो। कृपया बताइये जज साहब! कुछ तो बोलिये। यकायक लोगों की निगाहें घूम कर जज साहब पर जा टिकीं। सब हक्के-बक्के एवं भौचक्के से उन्हें देखे जा रहे थे। जज साहब दोनों हाथ अपने सिर पर टिकाये औंधे मुँह टेबिल पर झुके पड़े थे। स्वयं जज से ही जिरह!!!

– प्रस्तुति – पण्डिता प्रतिभा भारद्वाज 'वासिष्ठ'

श्रीमद्भगवद्गीता की समन्वयात्मक दृष्टि

–डॉ. विजय कुमारी गुप्ता

'श्रीमद्भगवद्गीता' दार्शनिक ग्रन्थों में सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है। विशुद्ध दार्शनिक ग्रन्थ न होते हुए भी यह वेदान्त की प्रस्थानत्रयी का अन्यतम ग्रन्थ माना जाता है। इसमें व्यक्त सिद्धान्तों पर औपनिषदिक सिद्धान्तों का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। यही कारण है कि श्रीमद्भगवद्गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में "**उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायाम्**" लिखा गया है। परम्परा के अनुसार उपनिषद् श्रुति के अन्तर्गत आते हैं। 'गीता' की तुलना में यद्यपि उपनिषदों की श्रेष्ठता निर्विवाद है, तथापि अपने क्षेत्र में वह उपनिषदों से अधिक लोकप्रिय है। व्यावहारिक दर्शन तथा अपनी समन्वयवादिता की दृष्टि से तो गीता अद्वितीय है।

'गीता' का उपदेश जिन परिस्थितियों में हुआ वह बड़ी विकट थीं। उन परिस्थितियों से अर्जुन जैसा महायोद्धा भी विचलित हो गया था। वह ऐसी भूमि में खड़ा था जहाँ परस्पर भाई–भाई के विनाश के लिए खड़ा था। शिष्य गुरु को मारने एवं छोटे अपने बड़े बुजुर्गों को धाराशायी करने को खड़े थे। ऐसे विनाशकारी दृश्य को देखकर अर्जुन किंकर्त्तव्य विमूढ ही नहीं हुआ अपितु उसने अपने क्षत्रियधर्म के विरुद्ध यहाँ तक कह दिया कि मैं भीख माँग कर खा लूँगा पर युद्ध नहीं करूँगा।[1] ऐसी स्थिति में अर्जुन के लिए कर्म का प्रतिपादन दार्शनिक सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि में किया गया। गीता एक ऐसा व्यावहारिक कर्मशास्त्र है जो उपनिषदों पर आधारित ब्रह्मविद्या पर प्रतिष्ठित है और उसका मन्तव्य है– परिस्थितियों के अनुरूप कर्म का प्रतिपादन करना। तात्विक दृष्टि से गीता में दो पक्ष दिखाई देते हैं– (1) दार्शनिक, (2) व्यावहारिक।

तात्विक पक्ष –

गीता के अनुशीलन से पता चलता है कि वह मोटे तौर पर दार्शनिक रूप से तीन तत्त्वों या पदार्थों को स्वीकार करती है– (1) क्षर, (2) अक्षर (3) पुरुषोत्तम।

1. क्षर –

क्षर तत्त्व से तात्पर्य जड़ या भौतिक जगत् से है। इसको क्षर इसलिए कहा गया है क्योंकि यह क्षयशील या नश्वर है। इसकी उत्पत्ति और विनाश होता रहता है। जिस प्रकार वृक्ष–बीज से उत्पन्न होता है और अन्त में पुनः उसी में विलीन

1 भारतीय दर्शन, पृ. 109.

हो जाता है, उसी प्रकार यह जगत् ईश्वर से ही उत्पन्न होता है और उसी में विलीन हो जाता है। इसलिए इसको क्षर कहा गया। गीता में कहा गया है- '**क्षरः सर्वाणि भूतानि।**''[2] क्षर के अन्तर्गत पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार तथा पञ्च महाभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय , पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन तथा शब्दादि पञ्च तन्मात्राएँ या विषय आ जाते हैं।[3] इसको ईश्वर की अपरा प्रकृति भी कहा गया है। इस अपरा प्रकृति के अन्तर्गत चैतन्य से रहित सम्पूर्ण भौतिक जगत् आ जाता है।[4] अगर दार्शनिक दृष्टि से देखा जाये तो सांख्य के समस्त 24 तत्त्वों का अन्तर्भाव 'गीता' के इस 'क्षर' में हो जाता है। सम्भवतः इसीलिए उसे 'प्रकृति' भी कहा गया है। इस 'अपरा प्रकृति' का ईश्वर से अनादिकालीन सम्बन्ध है। उसी से इसकी उत्पत्ति और उसी में तिरोधान होता है। इसी को अधिष्ठान बनाकर वह सृष्टि की रचना करता है। इतना होते हुए भी यह 'प्रकृति' ईश्वर की 'माया' से नितान्त भिन्न है। इन दोनों ही तत्त्वों का पार्थक्य 'गीता' की इस पंक्ति से सिद्ध होता है।[5]

2. अक्षर-

दूसरा तत्त्व है-अक्षर। यह 'अक्षर' इसलिए है क्योंकि इसका लय किसी में नहीं होता। इसको पराप्रकृति भी कहा गया है। यह चैतन्य से अनुप्राणित होने के कारण जड़-जगत् की तुलना में उत्कृष्ट है। जिसका वर्णन गीता के अनेक अध्यायों का विषय है। अक्षरतत्त्व का जन्म-मरण नहीं होता। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत है। शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।[6] यह न मारा जाता है, न ही मरता है।[7] इसका एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में जाना, पुराने कपड़ों को उतारकर नये कपड़ों का पहनने के समान है। यह अच्छेद्य, अशोष्य, अक्लेद्य और उदाह्य है तथा सर्वव्यापक, स्थिर, अचल और सनातन है।[8] अक्षर तत्त्व अविद्या के कारण ही ईश्वर से भिन्न है न कि तत्त्वतः।

3. पुरुषोत्तम -

तीसरा तत्त्व है पुरुष, जो परमात्मा के नाम से जाना गया है। यह 'परमात्मा', 'ईश्वर', 'साक्षी' आदि से भी कहा गया है। कहीं-कहीं इसको

---

2. द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
-गीता, 15/16.
3. भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
- 7/4.
4. गीता, 13/ 6, 7.
5. अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
- 4, 6.
6. न जायते म्रियते......हन्यमाने शरीरे॥
-2/ 20.
7. गीता, 2/19.
8. गीता, 2/22, 23, 24, 25.

अव्यक्त भी कहा गया है। यह क्षर तथा अक्षर दोनों से ऊपर होने के कारण 'परमात्मा' कहा गया है।[9] इसकी अचिन्त्य और दिव्य शक्ति 'माया' है जिसके द्वारा यह प्रकृति को अधिष्ठित करके सृष्टि की रचना करता है। यह ईश्वर नाम का तत्त्व सभी के अन्दर विद्यमान रहता है **'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'** अतः वह ईश्वर ही संसार की समस्त वस्तुओं का एकमात्र अवलम्बन है। सब कुछ उसी में ओत:प्रोत है।

ख. व्यवहार पक्ष –

गीता के व्यवहार पक्ष के मुख्य बिन्दु निम्नलिखित कहे जा सकते हैं–

1. सर्वधर्म समन्वय –

'गीता' की सबसे बड़ी विशेषता है–गीता के समय तक प्रचलित सभी धर्मों, दर्शनों तथा मत मतान्तरों एवं विचारधाराओं का समन्वय करना। 'गीता' के पहले ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि विभिन्न साधना–पद्धतियों का भी उदय और विकास हो चुका था, जो आपस में पर्याप्त विरोध रखती प्रतीत होती थीं। परन्तु गीता ने यह प्रतिपादन किया कि इनमें परस्पर कोई विरोध नहीं है अपितु ये सभी मार्ग एक ही मंजिल में पहुँचने के साधन हैं। जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति इस समन्वित महामार्ग के अनुसरण से ही हो सकती है, एकांगी मार्ग से नहीं। ज्ञान और कर्म का समन्वय गीता की असाधारण विशेषता है। ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ स्थान देते हुए भी गीता में कहा है कि कर्म के बिना जीवन नहीं चल सकता। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य पर ध्यान देना चाहिए। किन्तु इस कर्म में ज्ञान का समन्वय अवश्य होना चाहिए। इसी से गीता में कर्म मार्ग का उदय माना जा सकता है। जो इस संसार में सुगमता से चलने का एक परमोपयोगी साधन है।

कर्मयोग –

गीता के अनुसार जीवन में आगे बढ़ने के लिए और लोक–कल्याण को देखते हुए प्रत्येक व्यक्ति को कर्म अवश्य करना चाहिए। वास्तव में विचार करके देखा जाए तो किसी भी व्यक्ति का जीवन बिना कर्म के चल नहीं सकता। गीता में यहाँ तक कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति बिना कर्म किए एक क्षण नहीं रह सकता अगर वह स्वयंकर्म नहीं करेगा तो उसको प्रकृति के गुण कर्म करने के लिए बाध्य कर देते हैं।[10] मनुष्य जीवन में सफलता तभी प्राप्त करता है जब अपने लिए विहित कर्मों को प्रमादरहित होकर सतत् अनुष्ठान करता रहे।[11] प्रत्येक व्यक्ति को विहित कर्म का ही

---

9. गीता, 15/7.
10. न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृति जैर्गुणैः॥
–3/5.
11. स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः।
–18/ 45.

पालन करना चाहिए। किन्तु यह भी कहा गया कि कोरा कर्म मनुष्य के लिए सांसारिक बन्धन हो जाता है, इसलिए उससे मुक्ति पाने का उपाय ज्ञान के साथ कर्म के अनुष्ठान को बताया है।

जो कर्म परोपकार्थ नहीं किये जाते, वे ही संसार में बाँधने वाले होते हैं। इसलिए अनासक्त भाव से ही संसार में रहते हुए कर्म करने चाहिए। कर्म का आचरण आसक्ति रहित होकर करने वाला व्यक्ति अपने जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। अनासक्ति का अर्थ है कर्म के फल की आकांक्षा का त्याग। फलाकांक्षा का त्याग ही सबसे बड़ा त्याग है और ऐसा करने वाला व्यक्ति सबसे बड़ा त्यागी तथा संन्यासी है।[12]

ज्ञानयोग–

गीता का दूसरा मार्ग है ज्ञान। ज्ञान को सबसे पवित्र मानते हुए लिखा है कि–

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

वह ज्ञान की अग्नि ही है जो कर्म की आसक्ति को जला कर खाक कर देती है। श्रीकृष्ण ने चार प्रकार के अपने भक्तों को गिनाते हुए कहा है कि मुझे दुःखी, जिज्ञासु, धन को चाहने वाला तथा ज्ञानी, ये चार प्रकार के भक्त भजते हैं और उनमें ज्ञानमार्ग पर बढ़ने वाला भक्त मुझे सबसे प्रिय है। **ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।** इस आत्मैकत्व की पूर्ण अनुभूति ही गीता का वास्तविक ज्ञान है। इस ज्ञान के दो रूप हैं – समस्त प्राणियों में स्वयं को देखना तथा अपने में समस्त प्राणियों को देखना।

इन दोनों ही रूपों में आत्मा की एकता का अनुभव करने वाले व्यक्ति को गीता में 'समदर्शी' कहा गया है। ऐसे समदर्शी के लिए संसार के किन्हीं भी दो पदार्थों में आत्मा की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह ब्राह्मण और चाण्डाल में एक ही आत्मा का दर्शन करता है।[13] क्योंकि वह तो दोनों का बाह्यरूप मात्र है। दोनों का जीवनाधायक तत्त्व तो एक ही है और वह है आत्मतत्त्व, जिसमें भेद की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

भक्तियोग –

मनुष्यों के श्रेय का विधान करने के लिए गीता ने जिन तीन अनन्य सामान्य उपायों की घोषणा की है।[14] उनमें भक्तियोग भी अन्यतम है। यह प्रथम दो उपायों का पूरक है। कर्म में आसक्ति को हटाने के लिए उसमें ज्ञान का समावेश करने की बात कही है परन्तु वैसा करना सबके लिए सम्भव नहीं है। संसार में विरला ही ऐसा होगा जो कर्म तो करे पर उसके फल की कामना न करे।

---

12. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

13. विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

14. मार्गास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कर्हिचित्॥

कर्म और उसका फल दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त उस मानवीय प्रकृति को भी भुलाया नहीं जा सकता जो केवल फल की आकांक्षा से ही मनुष्य को कर्म में प्रवृत्त करती है। शास्त्रकारों ने भी इसका समर्थन किया है–

प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते।

ऐसी स्थिति में कर्म का बन्धन कैसे शिथिल होगा ? अगर होगा भी तो कुछ वीतरागियों का ही, शेष संसार को इससे कोई लाभ न होगा। इस समस्या का समाधान 'भक्तियोग' करता है। जो श्रद्धा और प्रेम का ही समन्वित रूप है।

भक्ति का तात्पर्य है कि मनुष्य जो भी कर्म करे, उसे ईश्वर का समझ कर तथा उसी को समर्पित करने की भावना से करे।[15] यह समर्पण-भाव भक्ति की पराकाष्ठा है। इसीलिए गीता में भक्ति को ज्ञान के पूरक के रूप में भी दिखाया गया है। परमात्मा का प्रत्यक्ष साक्षात्कार और उसके साथ ऐक्य की अनुभूति, जो प्रायः ज्ञान का परिणाम मानी जाती है, भगवान् की अनन्य भक्ति से प्राप्त हो जाती है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि ज्ञान, भक्ति और कर्म के समन्वय से गीता ने जीवन की उन्नति में तीनों के समुचित योगदान की ओर संकेत किया है।

वस्तुतः गीता भारतीय धर्म और दर्शन का सरल और सरस समन्वय है। इसीलिए गीता भारतीय धर्म और दर्शन के प्रामाणिक रूप को सरलता से समझाने में अद्वितीय है।

–संस्कृत विभागाध्यक्षा, डी. ए. वी. कॉलेज, जालन्धर शहर।

---

15. यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय! तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

गीता का संदेश

–प्रा. भावना जी सोनी

श्रीमद्भगवद्गीता पहला ऐसा ग्रंथ है, जिसमें भारतीय दर्शनों, उपनिषदों एवं योग की सभी रीतिओं का सार है। गीता कालजयी महाग्रंथ है। गीता के दो अक्षरों में निहित मर्म गहन और गूढ़ है। उसका उपदेश किसी जाति, समाज और देश तक सीमित नहीं है, किन्तु समस्त मानव-समाज के लिए है। भगवद्गीता को भारतीय संस्कृति, दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक चिंतन का प्रतीक माना जाता है। गीता कर्म, ज्ञान और भक्ति की पावन त्रिवेणी है। यह एक ऐसा ग्रंथ है, जिसका विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है। भगवान् शंकराचार्य, रामानुज आदि अनेक आचार्यों, संत-महात्माओं और विद्वानों ने गीता पर भाष्य लिखे हैं, उसकी व्याख्यायें की हैं। इस पर जितनी टीकाएं लिखी गई हैं, उतनी दूसरे ग्रंथ पर नहीं। यह एक ऐसा शाश्वत ग्रंथ है, जो मनुष्यों की समस्याओं के समाधान के लिए परम उपयोगी है। गीता संदेश के अनेक गूढ़ अर्थ हैं, जिनको मनुष्य मानसिक शक्ति एवं आध्यात्मिक अनुभव की मदद से ही जान सकता है।

गीता का संदेश अत्यन्त स्पष्ट और सरल है। कुरुक्षेत्र के युद्ध मैदान में युद्ध के लिए तैय्यार सेनाओं के बीच में भगवान् ने यह ज्ञान अर्जुन को दिया था। अर्जुन कोई योगी, संन्यासी नहीं था, किन्तु एक सामान्य क्षत्रिय योद्धा था और लड़ने को तैय्यार अपने सम्बन्धियों को देखकर भावुक हो गया था। उसी को समझाने के लिए यह उपदेश था। अतः भगवद्गीता को समझने के लिए कोई विद्वत्ता की आवश्यकता नहीं है।[1] गीता में भगवान् कहते हैं कि–**भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं हयेतदुत्तमम्।**[2]

भगवद्गीता में अर्जुन श्रीकृष्ण के प्रति अपनी समस्यायें प्रदर्शित करता है और भगवान् समस्याओं का समाधान करते हैं। उन्होंने ज्ञानमूलक भक्तिप्रधान कर्मयोग की स्थापना की है। गीता का उपदेश प्रवृत्ति-प्रधान है। प्रवृत्ति-कर्म सूचक है। स्वजन-हत्या से दोष लगेगा इस व्यथा से पीड़ित अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण का उपदेश मनुष्यों के लिए है। वे कहते हैं–**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**[3]

1. कृष्णकृपामूर्ति श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी, भगवद्गीता, भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट मुम्बई, भूमिका पृ. 12, 1998.
2. गीता, 4.3.
3. गीता, 2.47.

यहां निष्काम कर्मयोग की सूचना है। स्वधर्म को ध्यान में रखकर लोकसंग्रह के लिए कर्म करना चाहिए। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण बार-बार अर्जुन को कहते हैं कि- **'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।'**[4] अर्थात् मेरे साथ तू अपना मन जोड़ दे और बुद्धि को लगा दे फिर तू मुझमें निवास करेगा इसमें कोई संदेह नहीं है। तदुपरांत, श्रीकृष्ण अर्जुन को ऐसा भी कहते हैं- ''यदि मेरे बताये मार्ग पर चलने में तू असमर्थ है तो केवल मेरे लिए कर्मपरायण हो जा। इस तरह करते हुए तू मेरी प्राप्तिरूप सिद्धि प्राप्त कर लेगा।''[5] यहां भगवान् का संदेश निष्काम आसक्ति रहित और भगवान् को अर्पण किये हुए कर्म करने में है।

गीता के विषय में श्रीअरविंद अपने जीवन के अनुभव से लिखते हैं- 'गीता एक अनंतराशि का अतुल समुद्र है। पूरी जिंदगी तक उसमें डुबकियां लगाकर रत्न निकालते रहो फिर भी उसका अंत नहीं आता। उसके एक-दो रत्न प्राप्त करने पर गरीब धनवान् हो जाता है।'[6] गीता में निहित सांख्ययोग की ताकत के कारण भगतसिंह, मंगलपांडे आदि अनेक देशभक्त मातृभूमि के लिए शहीद हो गये। कर्मयोग की प्रेरणा सभी को गीता में से मिली। गीता के हृदयस्थ भगवान् प्रत्येक मनुष्य को आश्वासन देते हैं -

''ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।[7] अर्थात् इस मृत्युलोक में सभी जीव मेरा अंश हैं। 21वीं सदी के मनुष्यों को जीवन की सही दिशा-गति कौन देगा ? गीता में भगवान् कहते हैं कि मैं सबके अंतःकरण में बैठकर सबको संभालता हूँ -

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढानि मायया॥[8]

भगवान् सबके अंतःकरण में बैठकर साक्षी बनकर देखते रहते हैं। गीता का लक्ष्य है कि मनुष्य पशुता छोड़कर सच्चे अर्थ में मनुष्य बने।

आज का युग नई-नई शक्तियों का युग है। इन शक्तियों को मार्गदर्शन गीता-ग्रंथ ही दे सकता है। यह समस्या युग भी है। इन समस्याओं का निराकरण भगवद्गीता से ही हो सकता है। पाश्चात्य विद्वानों से प्रभावित आज के बौद्धिक विद्वानों ने जब से गीता पर विचार करने का प्रयत्न किया तब से ज्ञान और भक्ति से अधिक कर्म के

4. गीता, 12.8.
5. गीता, 12.10.
6. युगशक्ति गायत्री, युगनिर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, पृ.29, डिसे. 2012.
7. गीता, 15.7.
8. गीता, 18.61.

सिद्धान्तों को माना। निःसंदेह गीता कर्मयोग शास्त्र है, किन्तु वह ज्ञान और भक्ति को साथ लेकर चलता है।

गीता की योगत्रयी के संगम-स्थल में अवगाहन करने से भगवत्-सत्ता के अंतःदर्शन होते हैं और संपूर्ण अंतरजगत् गीता के मधुर संगीत से संगीतमय हो जाता है। गीता में बताया हुआ उपदेश का यही परम और पूर्ण अर्थ है। यही ज्ञान है, जिसको अभिव्यक्त करने के लिए श्रीकृष्ण वचनबद्ध बने। इस ज्ञान की प्राप्ति के विविध साधनरूप ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय ही गीता का परम वचन है - "Geeta is not scripture of Hindunisam but Geeta is the scripture of humanity".

गीता का दिव्यसंदेश आज भी संपूर्ण मनुष्य-जाति के लिए उपयोगी है। गीता की ज्ञानधारा का आनंद केवल ज्ञानी-मनीषियों और विद्वानों के लिए नहीं है, किन्तु माता-सुलभ वात्सल्य अबोध-अज्ञानी शिशुओं को भी अनेकगुणा प्राप्त होता है – ''**सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति**'' कह कर हार स्वीकृत करने जा रहे अर्जुन को श्रीकृष्ण ने गीतामृत का पान करा कर अपने जैसे सामान्य मनुष्यों के लिए अपना हृदय खोलकर गीता का सर्वोच्च ज्ञान दिया है। गीता के लिए कहा गया है कि-

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्मादुविनिःसृता॥

(महा. भीष्मपर्व 43/1)

– आदिवासी आर्टस एण्ड कॉमर्स कॉलेज,
भिलोडा, जिला साबरकांठा (गुजरात)-383245

श्रीमद्भगवद्गीता का वैशिष्ट्य

– श्री ओमप्रकाश बजाज

बाइबिल अथवा कुरान की भान्ति गीता धर्मग्रन्थ नहीं है, नही यह केवल मात्र दर्शनशास्त्र ही है, अपितु गीता सम्पूर्ण जीवन शास्त्र, सर्वोत्कृष्ट आचारसंहिता, मानवीय समस्याओं दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करने की तथा सामाजिक स्तर पर व्यवस्था कायम करने की अमोघ कुंजी है। गीता से मानसिक ऊहापोह की अवस्था में सही दिशा मिलती है। इस में मानव-जीवन को हर दृष्टि से खरी उतरने वाली व्यावहारिक शिक्षा देने वाला चिन्तन निहित है। इस महान् ग्रन्थ की सब से अधिक उल्लेखनीय बात तथा सब से बड़ी देन है निष्काम कर्मयोग या अनासक्ति योग- यह एक ऐसा योग है जिससे संसार से भागे बिना और कर्मों से डरे बिना संसार में रहा भी जा सके और सांसारिक बन्धनों से छुटकारा भी पाया जा सके।

गीता में योग की परिभाषा ही यह की गई है कि कर्म भी करते रहा जाए और उनके बन्धन में न बन्धा जाए- जीवन जीने की यह कला ही योग है- **''योगः कर्मसु कौशलम्''** इस कला को तथा 'कर्म में अधिकार है फल में नही', इसे भी योग का सूत्र बताया गया है, ''कर्मण्येवाधिकार-स्ते मा फलेषु कदाचन''- कर्म करते रहो पर फल की इच्छा न करो- यही कर्मयोग है। तीव्र आसक्ति का त्याग ही कर्मयोग है और यही जीवन की वह कला है जिस से मनुष्य जीवनमुक्त हो सकता है।

मोहग्रस्त और परिणामतः अपने कर्त्तव्य-कर्म से विचलित मानव-मन को मोह एवं संदेह से मुक्त कर पुनः कर्त्तव्य-पथ पर लाने का सुंदर माध्यम है श्रीमद्भगवद्गीता। गीता का प्रयोजन शरीरधर्म तथा उस से भिन्न स्वधर्म के पालन में बाधक मोह का निवारण कर काम, क्रोध, लोभ आदि से मुक्ति दिलाना है। गीता से जुड़ने का अर्थ है जमीन से जुड़ना। कुछ वर्ष पूर्व अंग्रेज़ी पत्रिका बिज़निस वीक में छपे एक लेख में बताया गया था कि आज दुनिया की बड़ी-बड़ी कम्पनियों के वरिष्ठ अधिकारी तथा प्रबंधक गीता पर व्याख्यान सुनने को एकत्रित होते हैं यहां तक कि कुछ एक ने तो घर पर गीता पढ़ना भी शुरू कर दिया है। उनके अनुसार गीता पढ़ने से सही निर्णय लेने में सहायता मिलती है। आज गीता मानवमात्र के लिए अपरिहार्य ग्रन्थ हो गया है। वह चाहे किसी भी देश का हो, किसी भी कार्यक्षेत्र में हो।

गीता ज्ञान का सूर्यभक्ति रूपी मणि का भण्डार तथा निष्काम कर्म का अगाध सागर है। गीता में ज्ञान, भक्ति और निष्काम भाव का तत्व रहस्य जैसा बतलाया गया है, वैसा किसी ग्रंथ में अन्यत्र एकत्र नहीं मिलता। आत्मा के उद्धार के लिए गीता सर्वोपरि ग्रंथ है ही। इस के सिवा यह मनुष्य को सभी प्रकार की उन्नति का मार्ग दिखाने वाला एक अद्वितीय ग्रंथ भी है। कर्मफल की आसक्ति, अहंता, ममता से रहित हो कर संसार के हित के उद्देश्य से कर्त्तव्य-कर्म करना गीता का उपदेश है। गीता एक जाति विशेष का ग्रंथ नहीं, अपितु सार्वभौम सार्वकालिक मानव-कल्याण का प्रकाश स्तम्भ है।

– बी-2, गगन विहार, गुप्तेश्वर, जबलपुर-482 001 (म. प्र.)

गीता–सभी समस्याओं का समाधान

–डॉ. राम मेहर

''गीता'' साधना–विषयक एक अभूतपूर्व ग्रन्थ है। इसमें न तो केवल दार्शनिक तत्वों की कोरी विवेचना है और न ही बौद्धिक कलाबाजियां हैं। इसमें एक साधक के लिए, उसके साधन–पथ का एक ऐसा विशद वर्णन है, जो साधक को उसकी वर्तमान परिस्थितियों, उसकी साधन–संयम विषयक स्थितियों में से निकाल कर उसे साधना के मार्ग पर आगे ले जाने के लिए सहज में ही एक दिशा एवं गति प्रदान करता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि निम्न प्रवृत्तियाँ ही हमारे साधनपथ की बाधायें व कमजोरियाँ हैं। यदि हम हारते हैं तो इन्हीं से। यही हार हमारे जीवन में निराशा भरती है व साधना को शिथिल करती है। इन निम्न प्रवृत्तियों के विभिन्न रूपों की समुचित जानकारी के अभाव में हमें भटकना पड़ता है। यदि एक बार इस बारे में समुचित जानकारी प्राप्त हो जाय तो साधना–मार्ग सरल हो जाता है। संसार में आधिदैविक, आदिभौतिक और आध्यात्मिक तीन प्रकार के दु:ख मनुष्य को सताते हैं। इन तीनों प्रकारों के दु:खों से छुटकारा पाकर मुनष्य अपनी सभी समस्याओं को हटाकर सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है।

1. **आधिदैविक दु:ख** वे हैं जो मनुष्य को देव, अग्नि, वायु इत्यादि के प्रभाव से प्राप्त होते हैं। जैसे अतिवृष्टि, अनावृष्टि, प्राकृतिक आदि आपदाएं।
2. **आधिभौतिक दु:ख**–भूत अर्थात् प्राणियों से उत्पन्न होने वाले दु:ख आधिभौतिक कहलाते हैं –दु:ख जैसे मनुष्य,पशु,पक्षी, टिड्डीदल, व्याघ्र आदि से प्राप्त होने वाले।
3. **आध्यात्मिक दु:ख** दो प्रकार के होते हैं (क) शारीरिक (ख) मानसिक। शारीरिक दु:ख वे हैं जो वात, पित्त, कफ की विषमता से उत्पन्न होते हैं- जैसे ज्वर अतिसार आदि। मानसिक- मन से उत्पन्न होने वाले दु:ख मानसिक कहलाते हैं – जैसे प्रिय के वियोग से उत्पन्न होने वाला या अप्रिय वस्तु के संयोग अथवा जिस वस्तु की इच्छा हो उसके प्राप्त न होने से उत्पन्न होने वाले सभी दु:ख मानसिक कहलाते हैं।

इन सभी दु:खों के लिए मनुष्य स्वयं ही कारण है। जिसका मूल कारण अज्ञान है जिसका निवारण केवल ज्ञान द्वारा ही कर सकता है। सत्य, असत्य, उचित, अनुचित का विवेकात्मक ज्ञान होने पर मनुष्य दु:खों को कम कर सकता है।

इन सभी समस्याओं का निदान कैसे हो? यह सब समाधान भगवान कृष्ण द्वारा गीता में दिए गए हैं। हम सभी बाहरी खूबसूरती को देखते हैं जो समय के साथ विलुप्त हो जाती है। यह जानते हुए भी कि एक न एक दिन हमें इनसे दूर होना पड़ेगा फिर भी हम अपने परिजनों से भी इतना मोह करते हैं जो दु:ख का कारण है। इस विषय में

श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है[1] कि ''हमें किसी के मिट्टी में विलीन हो जाने पर शोक नहीं करना चाहिए। एक दिन हम सभी को मिट्टी में विलीन होना है'', लेकिन हमें इस नश्वर देह के मोह में पड़ने से दूर रहना चाहिए। दुःख-सुःख भी हमारे जीवन की एक बड़ी समस्या है। ज़रा-सा दुःख पाकर हम भयभीत हो जाते हैं व ज़रा-सी खुशी मिलने पर हम खुशी से उछलने लगते हैं। अगर हम दुःख-सुःख को एक समान मान कर चलें तो हमारी जीवन की बहुत सारी समस्याओं का अन्त हो जाएगा।

इस विषय पर श्रीकृष्ण ने द्वितीय अध्याय में लिखा है[2]-दुःख-सुःख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रिय व विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्ष के योग्य होता है।'' हमें कर्तव्य निर्वाह करते हुए सुख व दुख के क्षणिक आने-जाने को सहन करने का अभ्यास करना चाहिए।

गीता में यह भी लिखा है कि हमें अपने व परिजनों के जीवन व मृत्यु से व्याकुल नहीं होना चाहिए। यह व्यष्टि आत्मा मृत्यु होने पर अन्ततोगत्वा एक शरीर से बदल कर दूसरे शरीर में स्थानान्तरण कर जाता है और क्योंकि अगले जन्म में इसको शरीर मिलना अवश्यम्भावी है चाहे उसका शरीर आध्यात्मिक हो या भौतिक लेकिन अपने व अपने प्रियजनों के दूर जाने का शोक नहीं करना चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण मनुष्य को यह भी बताते हैं कि – जीवन में स्थिर रहने का एक और उपाय है वह है क्रोध न करना।

हमें अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित करके क्रोध से बचना चाहिए। यह क्रोध ही मानसिक और शारीरिक समस्याओं को जन्म देता है। भगवान् कृष्ण ने गीता में हमें क्रोध से बचने की शिक्षा दी है। क्रोध के आवेश में आकर हम अपना अहित कर बैठते हैं। क्रोध को त्याग कर कृष्णभावनामृत के द्वारा या सारी इन्द्रियों को भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगाकर इन्द्रियतृप्ति की बलवती शक्तियों को दमित किया जा सकता है। जिस प्रकार शत्रुओं का दमन श्रेष्ठ सेना द्वारा किया जाता है ठीक उसी प्रकार इन्द्रियों का दमन किसी मानवीय प्रयास के द्वारा नहीं, अपितु उन्हें भगवान् की सेवा में लगाये रखकर किया जा सकता है।

तृष्णा भी मानव जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या है। मनुष्य को जितना मिलता है, उससे वह सन्तुष्ट नहीं होता जिससे उसकी और अधिक पाने की लालसा एवं इच्छा बढ़ती रहती है, जो मनुष्य का सुःख-चैन सब खो देती है। अतः तृष्णा का शमन ही सुख का मूल है। जो व्यक्ति, निष्काम-भाव से कार्य करता हुआ जीवन व्यतीत करता है तथा कामनाओं के वशीभूत नहीं होता वही शान्ति प्राप्त करता है। गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं[3] कि- जो पुरुष समुद्र में निरन्तर प्रवेश करने वाली नदियों के समान इच्छाओं व तृष्णाओं के निरन्तर प्रवाह से विचलित नहीं होता, वही सदैव स्थिर व शान्ति प्राप्त कर सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि विशाल सागर में सदैव जल रहता है, किन्तु वर्षा ऋतु में विशेषतया यह

1. गीता, 2.11.
2. गीता, 2.15.
3. गीता, 2.7.

अधिकाधिक जल से भरता जाता है तो भी सागर उतने पर ही स्थिर रहता है। वह न तो विक्षुब्ध होता है न ही तट की सीमा का उल्लंघन करता है। भगवान् की भक्ति में लीन तथा सम्पूर्ण इच्छाओं का त्यागकर तटस्थ भाव से रहने वाला नित्य तृप्त जन सागर के तुल्य होता है जो अपने में सदैव पूर्ण रहता है। सागर में गिरने वाली नदियों के समान इच्छाएं उसके पास आ सकती हैं, किन्तु वह अपने कार्य में स्थिर रहता है और इन्द्रियतृप्ति की इच्छा से इंचभर भी विचलित नहीं होता।

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि-कर्म करना मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है। क्योंकि कर्म के बिना वह एक क्षण भी नहीं रह सकता। किन्तु कर्म भी मनुष्य समस्याओं का कारण है। बुरे कर्म मनुष्य के जीवन में कई समस्याओं को जन्म देते हैं। गीता में कर्म की महत्ता को बताते हुए व शुभ कर्म करते हुए हमें सु:ख प्राप्त करने का उपदेश दिया गया है। वस्तुत: संसार अनेक समस्याओं का घर है। यह ठीक है कि कोई भी व्यक्ति स्वयं ही अपने लिए समस्या पैदा करता है। पर यह भी गीता स्पष्ट करती है कि मनुष्य उन समस्याओं से अपने आप ही पार कर सकता है। मनुष्य स्वयं ही अपनी उन्नति और अवनति का कारण है। वह किसी से न तो सुख प्राप्त कर सकता है और न दु:ख अपितु अपने ही कर्म से सु:ख-दु:ख का भागी बनता है। गीता मनुष्य को वास्तविकता की ओर ले जाती है, उसको जीने का रास्ता बताती है। अत: जो गीता का अर्थ समझकर उसे अपने जीवन में अपना लें, वे मोक्ष प्राप्त करके जीवन-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो गए और जो नहीं समझ पाए वे अपने जीवन में नहीं समा पाए वे हर जीवन में जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमते हुए कष्ट सह रहे हैं। हमें अपनी समस्याओं का हर समाधान गीता के सार से ही मिल जाता है। जो पूरी गीता न पढ़ पाए हों, वे उसके सार को पढ़ कर ही अपनी समस्याओं का समाधान पा सकते हैं।

सम्पूर्ण गीता को कोई न भी पढ़े और केवल मात्र इतना ही भाग पढ़ ले जिसमें भगवान् कृष्ण कहते हैं कि-तूं सब कुछ छोड़ कर एकमात्र मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे संसार के सभी झंझटों से छुटकारा दिला दूँगा तो निश्चय ही मनुष्य इस संसार-सागर से पार हो सकता है। अत: यदि हम अपने आप को भगवान् को समर्पित कर दें तो सभी समस्याएँ वहीं पर खत्म हो जाएंगी। जब कोई समस्या ही नहीं रहेगी तब हम सुख, शान्ति से भगवान् द्वारा दिए गए जीवन के अनुरूप जी सकेंगे। हम जितना चिन्तामुक्त होंगे उतना ही सही मार्ग पर चलेंगे। अगर हम सुकर्म करते हुए इस मिट्टी में अपने शरीर को विलीन व भगवान् की शरण में पहुँच कर अपनी आत्मा को भी पवित्र करके उस परम शक्ति की सेवा में जाकर इस जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं तो हमारे जीवन-मरण का चक्र व हमारी सब समस्याएं समाप्त हो जाएंगी।

– सीनियर सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग,
यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़।

भगवद्गीता में राज्य-व्यवस्था

–डॉ. अलंकार सुषमा

श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा उपनिषद् है, जिसका प्रवचन किसी तपःस्थली या आश्रम के वातावरण में नहीं हुआ है, बल्कि युद्धभूमि में हुआ है। धृतराष्ट्र की जिज्ञासा है कि –

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेताः युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥[1]

श्रीकृष्ण जिस पक्ष में खड़े हैं, वह पक्ष अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है और वे किसी ऐसी राजनैतिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहते हैं जो स्थिर और सुदृढ़ हो। उपनिषदों की कथाओं की आधारभूमि पारमार्थिक है और उसका रंगमंच आचार्य का आश्रम है। किन्तु, गीतोपनिषद् का विषय न केवल आध्यात्मिक ही है, बल्कि राजनैतिक भी है। यहाँ ज्ञानोपदेष्टा श्रीकृष्ण हैं, जो स्वयं एक राजा हैं, श्रोता अर्जुन भी एक राजपुत्र है और उपदेश का स्थान है युद्धभूमि। उपदेश का सम्भावित फल है समाज को एक सुन्दर राज्यव्यवस्था देना। कृष्ण के उपदेश से यदि अर्जुन युद्ध करता है और सफल होता है, तो युधिष्ठिर का राज्याभिषेक होगा, जो धर्मराज के रूप में सामाजिकों में यश अर्जित कर चुके हैं। इस पृष्ठभूमि में यह गीताज्ञान प्रवाहित हुआ है। श्रीमद्भगवद्गीता विविध शास्त्रों का सार है। गीता का अध्यात्मवाद जहां दार्शनिक पक्ष स्थापित करता है, वहीं इसे समाज चेतना का ग्रन्थ भी स्वीकार किया जाता है। गीता में 'राजशास्त्र' का विषय भी अन्तर्भूत है। इस ग्रन्थ में जिस ज्ञान की मीमांसा है, वह सनातनज्ञान राजाओं के लिए ही उपदिष्ट होता रहा है अर्थात् इस सनातन ज्ञान का श्रोता राजवंश ही रहा है, गुरुकुल का अन्तेवासी नहीं। ज्ञानोपदेष्टा भी महर्षि न होकर राजर्षि हैं। इस अविनाशी (ज्ञान) योग का उपदेश सूर्य को दिया गया था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु से कहा। इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना है।[2]

श्रीकृष्ण का उपदेश मोक्षमात्र के लिए नहीं है। उनके उपदेश में इस लोक की चिन्तना भी है। वे अर्जुन को यह नहीं कहते कि चलो तुम्हें मोह ने घेर लिया है, इसलिए वन में जाकर तपस् करो। अर्जुन क्षत्रिय है। इसलिए तद्युगीन राजनैतिक परिस्थितियों में समरभूमि में ही अर्जुन को उपदेश देना प्रासंगिक है। अपने उपदेश में श्रीकृष्ण बार-बार यह दोहराते दीखते हैं कि हे अर्जुन! तुम क्षत्रिय हो और क्षत्रिय के लिए धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है।[3]

क्षत्रिय के लिए धर्मयुक्त युद्ध करना ही स्वर्ग का मार्ग है।[4] इतना हीं नहीं यदि इस युद्ध से अर्जुन पलायन करता है, तो वह स्वधर्म से च्युत होकर कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा–

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्त्तिं च हित्त्वा पापमवाप्स्यसि॥[5]

---

1. श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्-1.1.
2. गीता, 4.1-2.
3. श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्- 2.31.
4. श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्- 2.32.
5. श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्- 2.33.

इसलिए कृष्ण अर्जुन को कहते हैं –

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥[6]

इस प्रकार श्रीकृष्ण का अर्जुन के लिए उपदेश इसलिए है ताकि एक राजनैतिक सुव्यवस्था की स्थापना हो सके। तभी तो कृष्ण इस युद्ध को दो राजवंशों का युद्ध नहीं मानते, बल्कि इसे बार-बार धर्मयुद्ध कहते हैं। आत्मा का जो निरूपण हुआ है, उसकी पृष्ठभूमि में भी तो अर्जुन ही खड़े हैं। श्रीकृष्ण आत्मा की अमरता का सत्योद्घाटन करके और शरीर की नश्वरता का प्रतिपादन करके इस धर्मयुक्त युद्ध के लिए ही अर्जुन को प्रोत्साहित कर रहे हैं। श्रीकृष्ण सूर्य, वैवस्वत मनु आदि राजाओं का सन्दर्भ देकर कहते हैं कि यह ज्ञान पृथिवी पर लुप्त हो गया था, अब मैंने उसी राजशास्त्र का ज्ञान तुझे दिया है।[7]

समाज में राजनैतिक अव्यवस्था का साम्राज्य हो चुका है, यही श्रीकृष्ण की पीड़ा है। कृष्ण का लक्ष्य इस अव्यवस्था को उखाड़ फेंकना है। इसलिए कृष्ण अर्जुन को प्रमुख साधन मानकर सम्पूर्ण अधर्म के विनाश के लिए उसको प्रोत्साहित करते हैं। यही तो उनके जीवन का लक्ष्य वा प्रयोजन है–

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥[8]

श्रीकृष्ण चाहते हैं कि गुणसम्पन्न व्यक्ति ही राज्य करे। गुणविहीन क्षत्रिय भी राजपद के योग्य नहीं है। श्रीकृष्ण ने सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था का चित्र सूत्ररूप में उपस्थापित किया है – **चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।**[9] इस शाश्वत सूत्र के आधार पर ऐसी राज्यव्यवस्था की कल्पना की जा सकती है, जिसमें समाज के अवयव अपने-अपने गुणकर्मानुसार एक व्यवस्थित राज्य की निर्मिति में अपना-अपना योगदान कर रहे हैं। गुणकर्म की तुला पर टिका समाज निश्चयेन एक सुराष्ट्र ही होगा। इसी सुराष्ट्र की कल्पना वेद में भी देखी जा सकती है। समाज को एक शरीर मानकर वेद ने ब्राह्मण (बुद्धिजीवी) वर्ग को इस शरीर का मुख, क्षत्रिय को बाहू, वैश्य को ऊरू तथा शूद्र को पाँव मानकर एक व्यवस्थित समाज की कल्पना की है–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यःपद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥[10]

यही व्यवस्था धर्मशास्त्र में दिखाई देती है और इसी व्यवस्था का समर्थन गीता में भी उपलब्ध है। इस व्यवस्था का आधार गुणकर्म माना गया है। इस प्रकार भारतीय साहित्य में चतुर्वर्णव्यवस्था का प्रतिपादन सदा होता आया है। गीता की पृष्ठभूमि राजनैतिक ऊठापटक है, इसलिए गीता में भी चातुर्वर्ण्य का उद्घोष हुआ है। यह वर्णव्यवस्था भारतीय समाज का मेरुदण्ड था। ब्राह्मण के कर्त्तव्यों का निरूपण गीता के अट्ठारहवें अध्याय में देखा जा सकता है।[11]

–संस्कृत विभाग, डी. ए. वी. कॉलेज, चण्डीगढ़-10

---

6. श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्- 2.37.
7. श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्- 4.2.3.
8. श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्- 4.8.
9. श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्- 4.13.
10. यजुर्वेद, 31.11.
11. श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्- 18.42;43;48.

आधुनिक समाज में श्रीमद्भगवद्गीता के स्थितप्रज्ञ चित्त की प्रासंगिकता

–डॉ. कुलदीप सिंह आर्य

श्रीमद्भगवद्गीता अद्वितीय ग्रन्थ है, जितना नवीन महाभारत काल में था, ठीक वैसा ही आज भी है। यही कारण है कि संसार के हर कोने में मानव को उससे अद्वितीय शान्ति प्राप्त होती है। कुछ हिन्दू धर्माचार्यों द्वारा गीता को आत्मिक-शान्ति प्रदाता शास्त्र माना जाता है, वस्तुतः गीता कर्मशास्त्र है और समूचे विश्व के लिए, जाति, धर्म, सम्प्रदाय और राष्ट्रों की सीमाओं से बहुत दूर जीवमात्र के हितार्थ आचारशास्त्र है। इसी कारण गीता को पढ़ने-सुनने एवं विचारने से अलौकिक शक्ति एवं ऊर्जा प्राप्त होती है। गीता में स्थितप्रज्ञ चित्त की प्रासंगिकता पर श्री कृष्ण से अर्जुन पूछते हैं–

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत् किम्॥

(गीता, 2. 54)

केशव! समाधि में स्थित स्थितप्रज्ञ बुद्धि वाले पुरुष का क्या लक्षण है ? स्थितबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है ? कैसे बैठता है ? कैसे चलता है?

प्रथमाध्याय का शोकाकुल अर्जुन अपने शोक को भूल कर संवाद में रुचि लेने लगा। कर्मशील स्वभाव के कारण उसे शंका थी कि बुद्धियोग के द्वारा जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर लेने पर इस जगत् में कर्ममय जीवन संभव हो अथवा नहीं। समाधि आदि शब्दों के प्रचलित अर्थ से तो कोई यही समझेगा कि योगी पुरुष आत्मानुभूति में अपने ही एकान्त में रमा रहता है। प्रचलित वर्णनों के अनुसार नए जिज्ञासा-साधक की कल्पना होती है कि ज्ञानी पुरुष इस व्यावहारिक जगत् के योग्य नहीं रह जाता। ऐसी धारणाओं वाले घृणा और कूटनीति के युग में पला अर्जुन इस ज्ञान को स्वीकार करने के पूर्व ज्ञानी पुरुष के लक्षणों को जानना चाहता है। इसके उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं–

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

(गीता 2. 55)

हे पार्थ! जिस समय पुरुष मन में स्थित सभी कामनाओं को त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है उस समय वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। यहाँ श्री कृष्ण का संकेत आत्मानुभवी पुरुष के आन्तरिक और बाह्य जीवन का वर्णन कर भेड़ की खाल में छिपे भालुओं के समान पाखंडी एवं तथाकथित धर्मगुरुओं से

भिन्न सच्चे सन्त को पहचानने में आज के सन्दर्भ में बहुत सहायता करता है। पग-पग पर फैले स्थार्थ-सिद्धि में निपुण भोली जनता को लूटने वाले- स्वार्थी आडम्बरकारियों से श्रीकृष्ण का सचेत रहने का उपदेश आधुनिक समाज में बहुत सार्थक है। इसके अतिरिक्त यह प्रकरण साधकों के लिए विशेष महत्त्व का है क्योंकि इसमें आत्मानुभूति के लिए आवश्यक जीवनमूल्यों एवं विभिन्न परिस्थितियों में मन की स्थिति कैसी होनी चाहिए इस का विस्तार से वर्णन है ? इसी अवस्था का नाम जीवन्मुक्त भी कहा जा सकता है। यही स्थितप्रज्ञ भी कहलाता है। स्थितप्रज्ञ पुरुष आत्मा द्वारा आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है। उसकी सब कामनाएं समाप्त हो जाती हैं क्योंकि वह आनन्द स्वरूप का सानिध्य प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार दु:खों में उसका मन उद्विग्न नहीं होता सुख में उसकी स्पृहा निवृत्त हो जाती है। जिसके मन से राग, द्वेष, भय और क्रोध नष्ट हो गए हैं वह मुनि स्थितप्रज्ञ कहलाता है (2.56)।

स्थितप्रज्ञ का मुख्य लक्षण है आत्मानन्द की अनुभूति द्वारा सब कामनाओं का त्याग। श्रीकृष्ण ज्ञानी की पहचान का दूसरा लक्षण बताते हैं- सुख-दु:ख में मन का समत्व रहना। स्थितप्रज्ञ मुनि वह है जो राग, द्वेष भयादि से सर्वथा मुक्त है यदि हम पूर्णत्त्व प्राप्त मनुष्यों के स्वभावों का अध्ययन करें तो सामान्य जन से भिन्न ये अवस्थाएं ज्ञानियों की होती हैं। अब महर्षि व्यास श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से यहाँ आधुनिक समाज को यह सन्देश देना चाहते हैं कि यदि तुम सामान्य से विशेष व्यक्ति की श्रेणी में जाना चाहते हो तो- दु:ख-सुख में एक रहना और राग, द्वेष और क्रोध को समाप्त कर देना होगा, तभी यह सम्भव हो पायेगा।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(2.57)

जो सर्वत्र अतिस्नेह से रहित हुआ उन शुभ या अशुभ वस्तुओं को प्राप्त कर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित (स्थिर) है।

हमारा जीवन भी शुभाशुभ का मिश्रण है यह तो जीवन का स्वभाव ही है अत: सदैव अशुभ के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए उससे पलायन और शुभ की स्पृहा लगी रहना, अविवेक के कारण ही सम्भव है। ज्ञानी पुरुष अपने नित्य स्वरूप में स्थित होने के कारण जीवन की उत्कृष्ट एवं निकृष्ट परिस्थितियों में पूर्ण वैराग्य के रूप में रहता है अर्थात् आधुनिक समाज में जीते हुए मनुष्य को चाहे अशुभ वस्तु या शुभ वस्तु प्राप्त हो परन्तु वह दोनों ही परिस्थितियों में सम रहे और उसे परमात्मा का आशीर्वाद समझे तो वह दुखित नहीं होगा-

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(2. 58)

कछुआ अपने अंगों को जैसे समेट लेता है वैसे ही यह पुरुष सब ओर से अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा लेता है तब उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित होती है। आधुनिक समाज में रहते हुए मानव को यह पद्य सन्देश देता है कि कछुए की तरह इन्द्रियों को उनके विषयों से समेटने की कोशिश करो। क्योंकि **भोगाः न भुक्ता वयमेव भुक्ताः तृष्णाः न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।** हमारा जीवन बीत जाएगा परन्तु भोग नहीं।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(2. 61)

उन सब इन्द्रियों को संयमित करके मेरे अधीन हो जा क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ वश में होती हैं उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित होती है। आधुनिक समाज को कितना बड़ा सन्देश दिया गया है कि पहले अपनी इन्द्रियों को संयमित कर और उसके बाद भगवान् के अधीन हो जा, भगवान् के अधीन होने पर ही तुझे वर्तमान दुःखों से छुटकारा मिलेगा।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

(2. 66)

अर्थात् जब तक बुद्धि स्थिर नहीं होगी, परमात्मा में युक्त भी नहीं होगी, परमात्मा में बिना युक्त हुए भावना भी नहीं बनेगी, बिना भावना के शान्ति और शान्ति के अभाव में सुख नहीं मिलेगा। वर्तमान समाज में सुख की अभिलाषा में तड़फते मानव को श्रीकृष्ण का कितना सार्थक सन्देश है। यहाँ सीधा सुख नहीं कहा- सुख की एक श्रृंखला बताई है- इन्द्रिय संयम, स्थिरबुद्धि, ईश्वर में युक्त, भावना और शान्ति तब सुख का अनुभव होगा। अतः इस सिद्धान्त के द्वारा ही सुख मिल सकता है। इस प्रकार गीता का स्थितप्रज्ञ चित्त की आधुनिक समाज में बहुत बड़ी प्रासंगिकता है।

– अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डी. ए. वी. कालेज, अमृतसर।

गीता का महत्त्व

–डॉ. पद्मजा अमित

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय तत्त्वज्ञान के सारतत्त्व के रूप में समाहित है। यह एक ऐसा अनर्घ रत्न है जिसके प्रकाश से समस्त संसार आलोकित है। गीता का सम्बन्ध किसी धर्मविशेष या सम्प्रदाय विशेष से नहीं है अपितु वह कर्मविषयक मौलिक सत्य का प्रतिपादक शास्त्र है जिसके फलस्वरूप गीता का ज्ञान सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक माना जाता रहा है। इसीलिए कहा गया है कि –

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैःशास्त्रविस्तरैः
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

भले ही गीता का उपदेश कुरुक्षेत्र के मैदान में किंकर्त्तव्यविमूढ अर्जुन को लक्षित करके दिया गया है किन्तु वस्तुतः यह कृष्ण एवं अर्जुन के मध्य हुए संवाद के माध्यम से सांसारिक संघर्षमय जीवन के क्षेत्र में हतोत्साहित व्यक्ति के लिए स्वयं भगवान् के द्वारा प्रदर्शित कर्त्तव्य मार्ग का दिग्दर्शन है। विचार संघर्ष में लीन, विषादयुक्त, संशयग्रस्त अर्जुन से भगवान कृष्ण सर्वप्रथम कहते हैं– हे अर्जुन! हृदय की दुर्बलता का परित्याग कर युद्ध के लिए तत्पर हो। विशुद्ध कर्त्तव्य भावना के उपदेष्टा भगवान् श्रीकृष्ण के यह वचन वस्तुतः व्यक्ति को विजय, भूति तथा सन्नीति की ओर अग्रसर करने वाले हैं। फलस्वरूप अर्जुन संन्यास की ओर न जाकर प्राणपन से अपने कर्त्तव्यकर्म युद्ध में संलग्न हुआ और अन्त में अपने सभी शत्रुवर्ग पर पूर्ण विजय प्राप्त कर पाया। इसीलिए तो गीता के उपदेश को सुन कर वह स्वयं कहता है–

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

(18/ 73)

इस प्रकार यह महान् ग्रन्थ कर्मभीरू, प्रमादी, पाखण्डियों का शास्त्र नहीं है अपितु विघ्न–बाधाओं पर विजय प्राप्त करने वाले, उन्नति के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर होने वाले सत्यनिष्ठ जनों का कर्मशास्त्र है। गीता मनुष्य के सम्मुख आदर्श का प्रदर्शन करती है। गीता का विशिष्ट प्रतिपाद्य विषय है कि मनुष्य को अपना कर्त्तव्यकर्म उसके फल में अनासक्त होकर करना। अनासक्त बुद्धि तथा ईश्वरार्पण बुद्धि से किये गये कर्म की महिमा से गीता ओत–प्रोत है। मनुष्य उत्साह से सफलता प्राप्त करता है। चरैवेति, चरैवेति का गान भारत के महर्षियों के कर्त्तव्यपरायणता का ही सूचक है। कोई भी प्राणी लक्ष्यप्राप्ति तक कर्त्तव्यकर्म से विमुख न हो, यही गीता का उपदेश है। अगर विचार कर देखा जाये तो निश्चित ही गीता मानव जीवन का सम्बल है। वर्तमान समय

में भौतिकवाद का प्राबल्य है। जीवन भोगप्रधान हो गया है। भटकाव के चरम मोड़ पर पहुँचा मानव नित्य आत्मतत्त्व को विस्मृत कर क्षणिक-नाशवान् शरीर के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए नये-2 सुख-साधनों की खोज में लगा हुआ है। इस भयावह स्थिति से निकलने के लिए गीता ही एकमात्र रास्ता बताने वाली है जिसके उपदेश पर चल कर बड़ी सरलता से हम संसार सागर से पार हो सकते हैं।

गीता का उद्भव व्यवहार की भूमि से हुआ है और व्यवहार का आधार है कर्म और यही कारण है कि समस्त संसार की उत्कृष्ट भाषाओं में इसका अनुवाद किया गया है तथा अनेकों टीकायें लिखी गयीं। भारतीय दर्शन के क्षेत्र में शंकर आदि जितने भी महान् आचार्य हुए हैं उन सब ने सिद्धान्तों की पुष्टि एवं वैदुष्य की प्रतिष्ठा के लिए गीता पर भाष्य रचे क्योंकि यह भारतीय तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में एक अमूल्य ग्रन्थ के रूप में सम्मानित है।

डॉ. राधाकृष्णन गीता का महत्त्व बताते हुए लिखते हैं कि 'गीता के सन्देश का क्षेत्र सार्वभौम है। गीता का उपदेश किसी सम्प्रदाय विशेष के लिए नहीं है किन्तु मनुष्यमात्र के लिए उसका निर्दिष्ट मार्ग खुला है। सब प्रकार की उपासना पद्धतियों के साथ उसकी सहानुभूति है। उपर्युक्त विचार गीता की सार्वभौमिकता के परिचायक हैं। आध्यात्मिक प्रश्नों के समाधान, वादविवाद, भगवान् कृष्ण और अर्जुन के संवाद के रूप में भगवान् कृष्ण के विचार मनुष्य के आचार व्यवहार एवं जीवनयात्रा के लिए एक अमूल्य पथप्रदर्शक हैं।

केवल भारतीय ही नहीं अपितु वैदेशिक विद्वान् भक्त या विचारक एकमत होकर निःसन्देह गीता की महिमा को स्वीकार करते हैं और समय-समय पर अपने विचार भी प्रकट करते रहे हैं। आवश्यकता है उसके महत्त्व को आत्मसात् करने की, कर्त्तव्यबुद्धि की भावना में मधुर रस का संचार करने वाली गीता के सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने की ताकि विश्व में उत्साह, आशा, आत्मसम्मान, कर्त्तव्य-परायणता की स्थापना द्वारा नवजीवन का संचार हो।

– विभागाध्यक्षा, संस्कृत विभाग, मुन्ना लाल कॉलेज, सहारनपुर।

सामाजिक दृष्टि से गीता की उपयोगिता

–डॉ. उमा रानी

भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निःसृत वाणी श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय समाज में सैंकड़ों,हजारों वर्षों से प्रचलित एक अद्भुत ग्रन्थ है। इसका उपदेश सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है यदि इसे धर्म विशेष से सम्बद्ध न करके मनुष्य के आचरण पर लागू किया जाए तो यह निश्चित रूप से केवल धार्मिक व दार्शनिक ग्रन्थ न होकर एक महान् सामाजिक ग्रन्थ भी है क्योंकि इसमें सामाजिक प्राणियों की अच्छी, बुरी प्रवृत्तियों के लक्षण एवं अश्रेष्ठ प्रवृत्तियों के दूरीकरण हेतु उपाय बताये गये हैं। यह सन्मार्ग पर आचरण करने का मार्ग-प्रदर्शक तथा शाश्वत, नैतिक व सामाजिक मूल्यों पर आधारित है। व्यक्ति के विना समाज और समाजरहित व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं होता। इसी प्रकार प्रत्येक के घर में एक व अनेक व्यक्तियों से कुलपरम्परा चलती है।

गीता के प्रथम अध्याय में कुलधर्म तथा युद्ध से उत्पन्न दोषों का वर्णन कहते हुए अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण के सामने बड़े दीन-हीन भावना से प्रेरित होकर कहा है कि – प्रभो! यह युद्ध तो सब अनर्थों की जड़ है।[1] इसमें पुरुषों के मारे जाने पर निराश्रित, पुरुषविहीन स्त्रियां दूसरे पुरुषों द्वारा दूषित की जायेंगी। उत्तमकुल नष्ट होने पर कुलपरम्परा और कुलपरम्परा के विनाश होने पर स्वार्थ व अधर्म समस्त कुल पर हावी हो जायेगा। युद्ध में वंश के बड़े लोगों की मृत्यु हो जाने से, सनातन कुलधर्म विनष्ट हो जाने पर तथा कुल के अन्य सदस्यों का सन्मार्ग दर्शक न रहने से सम्पूर्ण वंश पर स्वार्थ और अधर्म का अधिकार हो जायेगा। कुलधर्म की स्त्रियां ही उसका कवच होती हैं। अधर्म-वृद्धि होने से वह कवच छिन्न-भिन्न हो जायेगा, तत्पश्चात् उनके दूषित होने से नरक के मार्ग वर्णसंकर की उत्पत्ति होगी जो श्राद्ध व पिण्डदान तथा तर्पणादि में बाधक होता है और श्राद्धादि से वंचित पितर कष्ट पाते हैं, यह नाश एक कुल तक सीमित न रह कर सम्पूर्ण समाज इससे प्रभावित होगा। इस प्रकार शाश्वत, जाति व कुलधर्म नष्ट हो जायेंगे तथा मनुष्यों, समाज एवं राष्ट्रीय जीवन दुःखमय हो जाने से उनका नरकवास होगा। गीता में प्रदत्त युद्ध के ऐसे दोषों से सम्यक्रूपेण अवगत होकर किसी भी देश के नेता युद्धस्थिति उपस्थित हो जाने पर उसे टालने का भरसक प्रयत्न कर सकते हैं ताकि समाज व राष्ट्र को हानि न हो।

गीता के द्वितीय अध्याय में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को कायरता को त्यागकर[2] समक्ष उपस्थित युद्ध को वीरतापूर्वक करणार्थ दिया गया उपदेश मानवमात्रार्थ ही है, जिसकी समाज के सन्दर्भ में महती उपयोगिता है। संकट पड़ जाए तो राष्ट्र व समाज के लिए युद्धस्थिति पैदा हो जाने पर युद्ध से विमुख होना कायरता होगी। जीवन के शाश्वत मूल्यों की सुरक्षा-हेतु युद्ध करना पड़ जाए तो करना चाहिए नहीं तो समाज विकृत हो जाएगा। इस विषय में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि धर्मयुद्ध से बढ़कर क्षत्रिय के लिए कुछ नहीं है–
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न

1. श्रीमद्भगवद्गीता 1/38-44

2. वही. 2/3

विद्यते।[3] ऐसे युद्ध को भाग्यवान् क्षत्रिय ही प्राप्त करते हैं।[4] क्षत्रियधर्म का पालन न करने पर तुझे अपयश प्राप्त होगा।[5] जो तुम्हारे लिए मरण से बदतर होगा, समाज अर्थात् सभी प्राणी तुम्हारी निन्दा करेंगे।[6]

इस प्रकार समाज में पाप व निन्दा का भय दिखाकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सन्मार्ग दिखाया। श्रीकृष्ण का यह सन्देश अर्जुन के माध्यम से समाज के प्रत्येक व्यक्ति को स्वकर्त्तव्यपालन की प्रेरणा देता है। जो सामाजिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

भगवान् द्वारा बताई गई योग-व्याख्या भी समाज के सन्दर्भ में गीता की महती उपादेयता है। गीता के अनुसार सुख-दुख, लाभ-हानि व जय-पराजय के चक्कर में पड़े मानव को इन दोनों से ऊपर उठ कर कर्म-प्रवृत्त होना चाहिए।[7] मनुष्य का केवल कर्म में अधिकार है, फल में नहीं- **कर्मण्येव अधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन**।[8]

कर्तव्य के विषय में भगवान् श्रीकृष्ण का कहना है कि श्रेष्ठ व्यक्ति को स्वधर्म-पालन करना चाहिए। अपने धर्म का पालन करते हुए यदि मृत्यु भी हो जाए वह भी तदर्थ श्रेयस्कर है। अधर्म अपनाना भयावह और समाज के लिए अहितकर है। अर्जुन! यदि तुम लोक व शास्त्रमर्यादा के विरुद्ध आचरण करते हो तो समाज अथवा प्रजा भी वैसा ही आचरण करेगी, अतः समाज के हितार्थ स्वधर्मपालन करना भी आवश्यक है, यहां अर्जुन के माध्यम से भगवान् मानव को स्वधर्मपालनार्थ प्रेरित कर रहे हैं।

इसी संदर्भ में गीता के द्वितीय अध्याय में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन के माध्यम से मानवमात्र को स्थितप्रज्ञ[9] विषयक बोध कराया गया है। आज संसार में प्रत्येक व्यक्ति तनावयुक्त है उसे इस स्थिति से मुक्त होने हेतु आसक्ति, भय, क्रोध, अहंकार, ममता तथा मन-स्थित सभी कामनाओं पर नियन्त्रण रखते हुए, रागद्वेष रहित परमात्मपरायण होकर व्यवहार करना चाहिए तभी वह वास्तविक प्रसन्नता अर्थात् शान्ति को पाकर सुखी जीवन-यापन कर सकता है।

गीता के प्रभाव से ही हमारे समाज में त्याग और संन्यास का भी महत्त्व है। मानव के लिए कर्मों का त्याग न करते हुए, आसक्तिरहित प्रभु, परायण होकर कर्तव्य कर्म करना ही श्रेयस्कर है। सिद्धि-असिद्धि में समभाव रखकर कर्म करने वाला व्यक्ति सात्त्विक कर्त्ता है।

इस प्रकार गीता में उक्त उपर्युक्त सभी विषय समाज के व्यक्तियों के लिए हितकर व सच्चे पथ-प्रदर्शक अर्थात् सन्मार्ग पर चलने हेतु प्रेरणादायक हैं। अतः भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य संवादरूप में गीता का उपदेश समस्त मानवता व समाज के कल्याणार्थ होने के कारण तथा सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप होने से गीता की महती उपयोगिता है।

– असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ऊना (हि.प्र.)

3. वही. 2/31
4. वही. 2/32
5. वही. 2/33
6. वही. 2/34
7. वही. 2/38
8. वही. 2/47
9. वही. 2/55,56,57,58,61,65,68

श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश

– श्री सेवारा अमरकुमार मन्नीभाई

श्रीमद्भगवद्गीता ग्रंथ का विश्व में कोई मोल नही है। यह ग्रंथ केवल भारत में नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में मान्य है। इस में जीवन कैसे जिया जाता है, जीवन में कैसे-कैसे गुणों की आवश्यकता होती है उसका मार्गदर्शन जितने अच्छे ढंग से किया गया ऐसा किसी दूसरे ग्रन्थ में मिलना संभव नहीं। इसमें वह उपदेश छिपा है, जो सामान्य से सामान्य लोगों को शिक्षा प्रदान करता है। मानव के जीवन में अच्छे गुणों का मिश्रण हो तो उसका जीवन दैवी और सुगंधित बनता है। मानव मानव तब कहलाता है जो नियमबद्ध जीवन जीता है। हमें अपना जीवन कैसे जीना चाहिए इस विषय में श्रीमद्भगवद्-गीता में लिखा है कि-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥[1]

कर्म करके अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए उसका उपदेश श्रीमद्भगवद्गीता में दिया है। मानव का जीवन अमूल्य है। अमूल्य जीवन जीने की एक कला होती है, और वह कला है हमारे शास्त्रों में बताया हुआ आवश्यक गुण। मानव का जीवन श्रेष्ठ और दैवी बने, उसका संपूर्ण जीवन निःस्वार्थ, प्रामाणिक और निर्लोभी बने और मानव की एक अलग पहचान बने ऐसे गुणों का वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् ने किया है। मानव कर्म से महान् बनता है। जीवन में अच्छे कर्मों से मानव श्रेष्ठ बनता है।

मानव भगवान् की श्रेष्ठ कलाकृति है। भगवान् ने इन्सान को बनाया है और इन्सान के जीवन में कैसे कैसे गुणों की आवश्यकता होती है उसका उपदेश श्रीमद्भगवद्गीता में दिया है कि-

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरा दुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते॥[2]

आज के युग में अच्छा गुणवान् इन्सान सभी को पसंद है। इन्सान में ईमानदारी, भाईचारा, कृतज्ञता गुण आवश्यक हैं। ऐसे गुणवान् इन्सान की समाज में प्रशंसा होती है। उसे बहुत प्रतिष्ठा मिलती है। लेकिन ऐसे गुण हमारे जीवन में आयें कहाँ से! तब हमें ऐसे दिव्य उपदेशों के लिए श्रीमद्भगवद्गीता को अपनाना चाहिए। गीता में ऐसा दिव्य उपदेश छिपा है जो हमारे जीवन को उन्नत कर सके। श्रीमद्भगवद्गीता हमें उपदेश

1. गीता, 2/47.
2. वही, 14/20.

देती है कि हमारे जीवन में निम्नलिखित उपयोगी गुणों का विकास होना चाहिए।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः॥[3]

यहाँ ऊपर दिये गये गुणों को यदि मानव अपने जीवन में लाये तो उसका जीवन श्रेष्ठ बन सकता है। मानव सर्व प्राणीमात्र के ऊपर दया भाव रखे, तथा सुख में तथा दुःख में भी अपने व्यवहार में समानता रखे तो वह इन्सान अपने जीवन में श्रेष्ठ पद हांसिल कर सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में छुपा हुआ अनमोल तत्वज्ञान जो हमारे जीवन में आ जाये तो हमारे जीवन की संपूर्ण समस्याओं का हल मिल जाये। श्रीमद्भगवद्गीता में बताया हुआ धर्म, भक्ति और गीता का ज्ञान ऐसा है जो हमें जीवन जीने की एक नई राह बताता है तथा एक नया रास्ता मिल जाता है। इन्सान को ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की युक्ति मिलती है और इस युक्ति के द्वारा जीवन के मंगलमय द्वार खुल जाते हैं। हर एक इन्सान की इच्छा होती है कि वह अच्छा और सुखमय जीवन व्यतीत करे, लेकिन इस समाज में जीने के लिए सामान्य इन्सान के सामने कई चुनौतियां आती हैं। तब इन कठिनाईयों से कैसे निपटा जाये उसका मार्गदर्शनात्मक उपदेश गीता में मिलता है।

श्रीमद्भगवद्गीता हमें संयमी जीवन जीने की कला सिखाती है। दूसरे ग्रंथों की तरह श्रीमद्भगवद्गीता केवल पाठ-पूजा करने का ग्रंथ नहीं है। बल्कि उसका उद्देश्य यह है कि गीता का उपदेश अपने जीवन में अपनाये तथा गीता में जो जीवन रीति पद्धति बताई गई है, उसका हम अनुकरण करें। तब इन्सान की अच्छाईयां बढ़ेंगी। हमारे जीवन में संयम का बहुत महत्व है। तब गीता हमें कहती है-इन्सान जब अपने मन में छिपी सारी कामनाओं का त्याग कर दे तथा आत्मा से आत्मा में संतुष्ट रहे तब यह स्थितप्रज्ञ बनता है। इस तरह यह पुरुष अंतकाल में ब्रह्मानंद को प्राप्त करता है।[4]

इस संसार में इन्सान को, कहीं से भी योग्य ज्ञानात्मक उपदेश नहीं मिलता है। इन्सान अपने नित्यकर्म में व्यस्त रहता है, और जब निष्फलता मिलती है तब इन्सान को अपने कार्य के बारे में सतत चिन्ता रहती है तब ऐसे लोगों को श्रीमद्-भगवद्गीता उपदेश देती है कि- मेरा भक्त अनन्य प्रेम से निरंतर निष्काम भाव से मेरा चिंतन करे, उसके योगक्षेम की चिन्ता मैं करता हूँ।[5] आज के समय में मनुष्य को कहीं से भी जीवन में उपयोगी हो ऐसा उपदेश नहीं मिलता है। श्रीमद्-

3. गीता, 12/13, 14.
4. वही, 2/55
5. वही, 9/22.

भगवद्गीता प्रत्येक को श्रेष्ठ कर्मयोग करने का उपदेश देती है।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥[6]

गीता की मान्यता है कि कर्म न करने से अच्छा है कर्म करना। इसी लिए वे अर्जुन को कर्म करने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि – यदि तू कर्म नहीं करेगा तो तेरे जीवन का निर्वाह कैसे चलेगा। इस तरह भगवान् योगेश्वर अर्जुन को गीता में उपदेश देते हैं कि आसक्ति रहित होकर अपने कर्म में जुट जाओ। इस प्रकार गीता समाज के सामान्य से सामान्य मानव को श्रेष्ठ और दैवी जीवन जीने की कला सीखाती है। इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता का महत्व इतना है कि भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं तथा विश्व की अन्य भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ है। विश्व के लोग श्रीमद्भगवद्गीता का अमूल्य तत्वज्ञान पढ़कर रोमांचित हुए हैं।

इस तरह श्रीमद्भगवद्गीता का विचार, उपदेश अमूल्य है। विश्व साहित्य में ऐसा अनमोल ग्रंथ कहीं नहीं मिलेगा। इसीलिए गीता के तत्वज्ञान के बारे में कहा गया कि–

सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता,दुग्धं गीतामृतं महत्॥[7]

– लैक्चरार, धर्मेन्द्रसिंहजी आर्टस कॉलेज, डॉ. यागनिक रोड, राजकोट।

---

6. गीता, 3/8, 9.

7. वही, श्लोक 6, गीतामाहात्म्यम्।

गीता में स्थितप्रज्ञ के लक्षण

– डॉ. आदित्य आङ्गिरस

संपूर्ण महाभारत में पूछे गये कतिपय श्रेष्ठ प्रश्नों में एक प्रश्न स्थितप्रज्ञ का है जिसे श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा–

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः कि प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।।[1]

समाधि में गये स्थितप्रज्ञ मनुष्य के क्या लक्षण हैं। स्थितधी क्या बोलता है एवं कैसे बैठता एवं चलता है अर्थात् उस का व्यवहार कैसा रहता है।

यह प्रश्न आज के संदर्भ में उतना ही उपयुक्त है जितना महाभारत काल के समय में था क्योंकि **इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।**[2] अर्थात् इन्द्रियों का वेग अतिबलवान् है और यही वेग मनुष्य मन को चंचल बना देता है। आधुनिक संदर्भ में, जबकि आजकल की भौतिकतावादी संस्कृति मनुष्य के मन को स्थिर करने की बजाय चलायमान एवं चंचल बनाने पर आमदा है, ऐसे में प्रश्न यही उपस्थित होता है कि मनुष्य को स्थितप्रज्ञ कैसे बनाया जाए। हमारा संपूर्ण उपनिषद्–साहित्य इसी विषय पर केन्द्रित रहा है एवं इसका जीवन्त उदाहरण नचिकेता, रैक्व आदि हैं जो चिन्तन एवं विचार के माध्यम से, योग आदि के माध्यम से आत्मवान् बने। वे आधुनिक एवं समकालीन समाज के सामने स्वयं को ही उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने 'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा' कह कर इस संसार में जन्म लेने वाले प्रत्येक जीव को जहां सीमाबद्ध कर दिया। वहीं श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता में स्थितप्रज्ञ के विषय में बात करते हुए कर्म विषयक संस्कृति के बारे में बताते हैं। ऐसा कर्म जो मनुष्य को आवागमन के चक्कर से मुक्ति दिलाने में समर्थ हो। इसीलिए वे कहते हैं कि – मनीषी व्यक्ति कर्म के माध्यम से जन्म एवं मरण से विनिर्मुक्त हुआ अनामय पद को प्राप्त करता है।[3]

आधुनिक संदर्भ में यह कहना सर्वथा समीचीन होगा कि हमारा समस्त व्यवहार, कर्म, इच्छाएं अन्य सभी कुछ हमें कर्मभोग से दूर नहीं ले जातीं अर्थात् विरक्त नहीं करतीं। कर्म में धनेच्छा, यश की इच्छा आदि कतिपय वे तत्व विद्यमान हैं जो मनुष्य को न तो शान्ति देने में समर्थ हैं और न ही मनुष्य को मोक्ष मार्ग पर ले जाने में। ऐसे में इन्द्रियमार्ग मनुष्य के लिए कितना लाभकारी है यह विचारणीय प्रश्न है–

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.54.
2. वही, 2.60.
3. वही, 2.51.

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि॥[4]

अर्थात् इन्द्रियों का मार्ग अथवा मनोमार्ग मनुष्य के लिए किसी भी स्थिति में श्रेयस्कर नहीं है क्योंकि मन के मार्ग पर चलते हुए मनुष्य अपनी इन्द्रियों के वश में होकर अपनी प्रज्ञा को खो बैठता है जो कि मनुष्य के लिए श्रेयस्कर नहीं है। ऐसे में मनुष्य के लिए क्या श्रेयस्कर है, इस विषय को अधिकृत कर कृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि मनुष्य को स्थितप्रज्ञ होना परम आवश्यक है।

स्थितप्रज्ञ होने की प्रथम सीढ़ी है मनुष्य की सभी क्रियाएं कामनारहित होनी चाहियें एवं तत्पश्चात् उसे अपने आप में संतुष्ट होना चाहिए। इसी संदर्भ में कृष्ण अर्जुन को आगे बताते हुए कहते हैं – दु:ख आने पर जो शांत मन वाला हो एवं सुखों की जिसे इच्छा न हो, राग भय क्रोध जिस व्यक्ति के नियंत्रण में हों वही मनुष्य श्रेष्ठ है क्योंकि उसी व्यक्ति की बुद्धि स्थिर है।[5] श्रीकृष्ण इन्हीं संदर्भों में आगे कहते हैं –

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥[6]

कर्म करना मनुष्य की नियति है एवं कर्म को शुभ एवं अशुभ फल तो लगते हैं अर्थात् कर्म के माध्यम से मनुष्य शुभता एवं अशुभता को प्राप्त करता है। परन्तु स्थितप्रज्ञ मनुष्य की श्रेष्ठता यही है कि वह शुभ एवं अशुभ कर्मफल को प्राप्त कर न तो प्रसन्न होता है और न ही किसी से द्वेष करता है ऐसे व्यक्ति को कर्म फल अपने में बांधता नहीं। इसी विषय में कृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि – प्रबुद्ध मनुष्य के मन का हरण इन्द्रियां कर सकती हैं क्योंकि इन्द्रियग्रामों का वेग अत्यन्त शक्तिशाली है।[7] ऐसे में असंयमी व्यक्ति की स्थिति कृष्ण स्पष्ट करते हुए बताते हैं –

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥[8]

अर्थात् असंयतेन्द्रिय व्यक्ति विषयों का ध्यान करता है जिसके कारण उसमें सङ्गदोष पैदा हो जाता है। संगदोष के कारण काम अर्थात् इच्छा का उदय होता है जिस के कारण अभिप्रेत फल प्राप्ति न होने के कारण क्रोध का उद्भव होता है, क्रोध के कारण संमोह एवं संमोह के कारण स्मृति-भ्रंश एवं स्मृतिभ्रंश का परिणाम बुद्धिनाश है। बुद्धिनाश से आत्मविनाश अर्थात् पतन अवश्यंभावी है। अत: जो व्यक्ति कर्म करता हुआ भी उन सभी कर्मों के फल को ईश्वरार्पण कर जीवनयापन करता है वही व्यक्ति मोक्ष की कल्पना कर सकता है तथा ऐसा व्यक्ति ही वास्तविक प्रसन्नता को प्राप्त करता है।[9] मन के

---

4. पूर्वोक्त, 2.67.
5. पूर्वोक्त, 2.56.
6. पूर्वोक्त, 2.57.
7. पूर्वोक्त, 2.60.
8. पूर्वोक्त, 2.62-63.
9. पूर्वोक्त, 2.64.

प्रसन्न रहने से सभी दु:खों की हानि हो जाती है। प्रसन्न एवं शांत चित्त व्यक्ति ही स्थितप्रज्ञता को प्राप्त करता है। स्थिरबुद्धि के लक्षण की समुद्र से तुलना करते हुए कृष्ण कहते हैं कि जिस प्रकार विभिन्न नदियां समुद्र में आकर मिलती हैं परन्तु समुद्र सभी प्रकार से सुस्थिर रहता है उसी प्रकार स्थिर प्रज्ञा वाला मनुष्य सभी इच्छाओं का आगार होते हुए भी निश्चल रहता है ऐसा व्यक्ति शान्ति को प्राप्त होता है।[10]

क्योंकि इसके साथ ही नि:स्पृह होकर और सभी कामनाओं का त्याग करके जो निर्मम एवं निरहंकार अथवा अहंकार रहित होता है वही व्यक्ति शान्ति को प्राप्त कर सकता है। ऐसी स्थिति को प्राप्त करने वाला व्यक्ति मोहित नहीं होता एवं अपने जीवन के अन्त:काल में वह ब्रह्मपद को प्राप्त करने में सक्षम होता है। गीता में श्रीकृष्ण जिस स्थितप्रज्ञता की ओर इंगित कर प्राणीमात्र को प्रेरित करने का प्रयास करते दिखाई देते हैं वह वस्तुत: एक अलग एवं अतुलनीय जीवन-दृष्टि है। मनुष्य के जीवन में सुख एवं दु:ख लगातार चलते रहते हैं। इसी कारण वह दु:खी होता है। और दु:ख का मूल है कर्म द्वारा अभीप्सित फल की प्राप्ति न होना। मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए विभिन्न माध्यम से सभी कुछ प्राप्त करने का यत्न करता है। यहीं से इच्छाओं की पूर्णता एवं अपूर्णता की कथा आरंभ होती है। ऐसे में मनुष्य कर्म करता हुआ फल का त्याग करने में समर्थ नहीं हो पाता। किन्तु स्थितप्रज्ञ मनुष्य कर्म से पैदा होने वाले फल को सद्बुद्धि से त्याग करता है। इस प्रकार त्यागमात्र या भगवद्-अपर्ण करने से जो भी व्यक्ति कर्म करता है वह परम पद को प्राप्त करता है।[11]

—असिस्टेण्ट प्रोफैसर, वी. वी. बी. एस. एण्ड आई. एस.,
(पं. वि. पटल) साधु आश्रम, होश्यारपुर।

10. पूर्वोक्त, 2.71.

11. पूर्वोक्त, 2.51.

स्थितप्रज्ञ महापुरुष की पहचान

–डॉ. शैलजा अरोड़ा

जीवन अनिश्चितताओं एवं दुश्चिंताओं का महासम्मेलन है। काल के अतिविस्तीर्ण प्रवाह में प्रवाहित होने वाला जीवात्मा यह नहीं जानता कि आने वाले कल का प्रभात किस रूप में उदित होगा। यह अनिश्चितता त्रिकालाबाधित सत्य है। यहाँ सभी को प्रतिदिन नई–नई चुनौतियों का सामना करना होता है। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए एक विलक्षण शक्ति की आवश्यकता होती है जिसका नाम है स्थितप्रज्ञता। महाभारत के महासंग्राम में अर्जुन एक विशेष परिस्थिति में आबद्ध खड़ा है। बाह्य शत्रुओं के साथ उसे अंतःशत्रुओं ने भी चुनौती दी है। यह चुनौती उसके लिए कल्पनातीत थी किन्तु संघर्ष भी अपरिहार्य था। इस संघर्ष में विजय कठिन थी परन्तु पराजय भी उसे पसंद नहीं थी। गीता अर्जुन को इस संग्राम का सामना तथा मानसिक रूप से उत्पन्न होने वाली कठिनाईयों से संघर्ष कर उन पर विजय प्राप्त करने का उपाय या मार्ग बताती है। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ऐसा उपदेश दिया, जिससे वह आन्तरिक रूप से शक्तिशाली बना रहे। श्रीकृष्ण कहते हैं –

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

(2/ 56)

दुःखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता तथा सुखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन पर स्पृहा नहीं होती तथा जो राग, भय और क्रोध से सर्वथा रहित हो गया है, उस मननशील मनुष्य को स्थिरबुद्धि कहा जाता है। बुद्धि की स्थिरता अर्थात् अंतःकरण की स्थिरता। प्रतिदिन होने वाले सुख–दुःख के अनुभवों के साथ उसका विशेष संबंध है। प्रायः जीवन को सुख–दुःख का संगमस्थल कहा जाता है। संतों ने भी कहा है– **संसार सुख–दुःख का सागर है।** हमारी दैनिक क्रियाओं पर उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। कभी किसी कार्य को करने में वह अतिउत्साहित तथा कभी उद्वेग से परिपूर्ण, कभी स्फूर्ति से भरा दिखाई देता है तो कभी हताश। सुख–दुःखरूपी क्षिप्त पाषाणखंडों द्वारा प्रशांत जीवन सरोवर में उठी हुई ये तरंगें हैं। किन्तु इस तरंगमय जीवन–सरोवर को भी प्रशांत बनाया जा सकता है, यदि हम अपने मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग दें और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट हो जाएं। स्थितप्रज्ञता एक ऐसा प्रदेश अथवा सागर है

जहां लौकिक सुख-दु:ख की तरंगें नहीं हैं। वहाँ न आयाम है और न विचलन ही। वहाँ तो केवल परमशान्ति का ही एकमात्र साम्राज्य है।

यद्यपि दु:ख किसी को भी प्रिय नहीं है परन्तु वह अवश्यम्भावी है। प्रतिदिन हमें किसी न किसी प्रकार के दु:ख अथवा प्रतिकूल परिस्थिति से दो-चार होना पड़ता है। दु:ख के अनेकों प्रकार हैं,जो भी विषम परिस्थितियां सामने आती हैं वे सभी दु:ख के मूल होती हैं। परन्तु इन सभी विपरीत और दु:खदायक परिस्थितियों में भी मन का स्थिर, शांत और उद्वेगरहित रहना स्थितप्रज्ञता की स्थिति का ही परिचायक होता है। कछुआ सब ओर से अपने अंगों को जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब व्यक्ति अपने मन को सब प्रकार के उद्वेगों से हटा लेता है तो वह स्थितप्रज्ञता के कक्ष में प्रविष्ट हो जाता है।

प्राय: लोग दु:ख और पीड़ा को एक समान समझते हैं किन्तु ध्यान रहे कि इन दोनों में एक सूक्ष्म भेद होता है। चोट लनगे पर अथवा रोगग्रस्त होने पर शारीरिक पीड़ा का होना स्वाभाविक है परन्तु इस पीड़ा को दु:ख की कोटि में नहीं रखा जा सकता। शारीरिक पीड़ा से मन में जो अशान्ति और उद्वेग व्याप्त होता है, उसे ही दु:ख कहा जाता है। संसार और व्यवहार की प्रतिदिन की परेशानियां और कठिनाईयां दु:ख नहीं हैं किन्तु इन परिस्थितियों में जो मानसिक उद्वेग जन्म लेता है, वही दु:ख है। शारीरिक रुग्णता अपरिहार्य है, यह किसी भी समय शरीर को अपनी चपेट में ले लेती है। इसी प्रकार नौकरी-व्यवसाय की समस्याएं भी सहज और स्वाभाविक हैं लेकिन स्थितप्रज्ञता उन पर विजय प्राप्त करने की युक्ति सिखाती है। **दु:खेष्वनुद्विग्नमना:** कहकर यह युक्ति भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सखा अर्जुन के समक्ष उद्घाटित की है। उनका यह कहना है कि सम्यक् दृष्टि और विवेक से मन को उद्वेग से रहित किया जा सकता है। इसी को विवेकबुद्धि कहा गया है। इसी को गीता के शब्दों में स्थिरप्रज्ञता कहा जा सकता है।

सत्पुरुष के पास इस विवेक का अकूत खजाना होता है। यह सच्चा विवेक अर्थात् स्थितप्रज्ञता परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराती है। स्थितप्रज्ञ पुरुषों का चित्त परमात्मा के साथ एक रस हुआ होता है। **कर्ता-हर्ता एवं तारणहार केवल भगवान् ही हैं,** इस सत्य को वे भलीभांति जान चुके होते हैं, आत्मसात् कर चुके होते हैं। अत: दु:ख के प्रसंगों में भी उनकी भीतरी अवस्था पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। वे मानसिक उद्वेग के लिए कभी ईश्वर को दोषी नहीं ठहराते। वे सुख-दु:ख के समस्त प्रसंगों को प्रभु का प्रसाद ही समझ कर प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करते हैं। **दास के दुश्मन हरि नहीं, जो करेंगे सुख ही करेंगे,** ऐसी भावना से युक्त उनकी बुद्धि सदैव निश्छल और स्थिर ही रहती है। यही कारण है कि स्थितप्रज्ञ पुरुष एक प्रसंग के पूर्ण होते ही दूसरे ही क्षण अगले कार्य में स्थिरतापूर्वक नियुक्त हो जाते हैं जैसे कुछ हुआ

ही नहीं हो। ऐसा उनकी भगवान् पर अटूट श्रद्धा, आस्था और विश्वास के कारण होता है। वे यह मानकर चलते हैं कि जो कुछ भी विगत में घटित हुआ है अथवा वर्तमान में घटित हो रहा है। वे यह मानकर ही संसार में चलते हैं कि उनकी प्रत्यक्ष प्रमाण अनुभूति है जो इन शब्दों में प्रस्फुटित होती है- **तेरी सत्ता के बिना, हे प्रभु मंगलमूल।**
पत्ता एक तक हिले नहीं, खिले न कोई फूल॥

स्थितप्रज्ञ पुरुष की यह मान्यता होती है कि वह तो भगवान् का सेवक है। इसलिए वह उसकी इच्छा को ही शिरोधार्य करके प्रसन्न रहना अपने ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति मानता है। उसकी धारणा होती है कि जिस प्रकार सूखा पत्ता वायु का आधार पाकर गतिशील रहता है, उसी प्रकार उनके आधीन रहकर आनन्द के साथ परमेश्वर का भजन करते रहना चाहिए और मन में किसी भी तरह की उद्विग्नता नहीं रखनी चाहिए। उनकी दृष्टि में प्रमुखता भगवान् की सेवा और भजन की होती है, सुख अथवा दु:ख की नहीं।

महाभारत के युद्ध के समय अर्जुन के समक्ष भी कुछ ऐसी ही परिस्थिति उपस्थित हुई थी। कठिन परिस्थिति के कारण उसका मन उद्विग्न हो गया था, वह तो अपने क्षत्रिय धर्म को छोड़कर भिक्षा द्वारा जीवन व्यतीत करने के लिए भी तैय्यार हो गया था। वह उस भीषण युद्ध की अग्नि में सगे सम्बन्धियों को नहीं झोकना चाहता था। ऐसी विषम स्थिति में भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे **दु:खेष्वनुद्विग्नमना:** इत्यादि कहकर स्थित-प्रज्ञता की दिशा में मोड़ दिया था। भगवान् कहते हैं कि अपने अधीन किए हुए अंत:करण वाला साधक अपने वश में की हुई, रागद्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अंत:करण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है। अंत:करण की प्रसन्नता होने पर उसके सम्पूर्ण दु:खों का अभाव हो जाता है और प्रसन्नचित्त वाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में ही भलीभांति स्थित हो जाती है जिससे वह परम शान्ति और शाश्वत सुख को प्राप्त हो जाता है-

प्रसादे सर्वदुखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्यासु बुद्धि: पर्यवतिष्ठते॥
(2/65)

यही उपदेश था जिससे किंकर्तव्य हुए अर्जुन में पुन: वह शक्ति आई कि जिसके आधार पर उसने शत्रु की असंख्य सेना को परास्त कर **यतो धर्म: ततो जयं:** की स्थापना की।

—4/114, एस. एफ. एस., अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर-302020

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्म-तत्त्व का चिंतन

–डॉ. दिनेश चन्द्र चौबीसा

श्रीमद्भगवद्गीता विश्व के श्रेष्ठतम ग्रंथों में से एक महान् ग्रंथ है। इसमें वेदों में निहित गूढ़ तत्त्वों का सार समाहित है, जो सम्पूर्ण मानव-जाति को सन्मार्ग दिखाने वाला सत्-चित् का दिशा-ज्ञान देने वाला एवं विश्व कल्याण का बोध कराने वाला आप्त ग्रंथ है। इस ग्रंथ से प्राणी अपनी पूर्णता तथा सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर सकता है। गीता के द्वितीय अध्याय में आत्म-तत्त्व का विशद चिन्तन हुआ है जो देह से भिन्न तथा अविनाशी है। यह सम्पूर्ण जगत् प्रकृति निर्मित होने से नाशवान् है। इसमें केवल चेतन आत्मा ही नाश रहित है,चिरन्तन सत् है।

प्राणीमात्र के शरीर में आत्मा ही एक ऐसा परमतत्त्व है जो शरीर में रहते हुए भी शरीर से अलग है। यह न स्वयं मरती है, न किसी को मारती है और न ही किसी के द्वारा मारी जाती है। आत्मा नित्य, अजर, अमर एवं अविनाशी है। जब कभी मृत्यु की बात उठती है तो शरीर मरता है, आत्मा नहीं। यह शरीर तो आत्मा का आवरण मात्र है। अतएव शरीर क्षणभंगुर एवं नाशवान् है, ठीक उसके विपरीत आत्म-तत्त्व अविनाशी है। श्रीकृष्ण अर्जुन को इन दोनों के बीच में अवस्थित सूक्ष्म-भेद को समझाते हुए कहते हैं-

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥[1]

हे भरतवंशी अर्जुन! तुम युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ क्योंकि यह नाश रहित, अप्रमेय, नित्य-स्वरूप जीवात्मा के ये सब शरीर कहे गये हैं। इस आत्म-तत्त्व के बारे में जो यह मानते हैं कि यह मारती है अथवा यह मारी जाती है। दोनों ही नासमझ हैं।[2] आत्मा की सत्ता सार्वकालिक, एवं शाश्वत है। यह किसी काल में न जन्म लेती है, न मरती है। इसका अस्तित्त्व चिरकालिक है जो जन्म तथा मृत्यु के बंधन से ऊपर उठा हुआ है। इसीलिए आत्मा को अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन कहा गया है।[3]

आत्मा और शरीर का सम्बन्ध, देह पर धारण किए जाने वाले वस्त्र-परिधान जैसा है। जिस प्रकार मनुष्य वस्त्रों के जीर्ण-शीर्ण होने पर, उसे फेंककर नूतन वस्त्र धारण करता है वैसे ही यह आत्मा भी पुराने शरीर को त्यागकर नया देह धारण कर लेती है।[4] इसे शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, जल भिगो नहीं सकता तथा वायु सुखा नहीं सकता है।[5]

---

1. गीता, 2.18.
2. गीता, 2.19
3. गीता, 2.20
4. गीता, 2.22.
5. गीता, 2.23.

डॉ. दिनेश चन्द्र चौबीसा

श्रीकृष्ण ने गीता में शरीर एवं आत्मा को सर्वथा पृथक् निरूपित किया है। प्राणी में दो प्रकार के तत्त्वों का समावेश है। एक तत्त्व शरीर जो नाशवान् है तथा दूसरी आत्मा, जो नित्य शाश्वत, अचल, अजर-अमर एवं सनातन है। शरीर की स्थिति का आकलन प्राकृतिक वस्तुओं के साथ किया जा सकता है, जो पैदा होता है और मरता है तथा जो मरता है उसका जन्म निश्चित होता है। इस पर हमारा कोई प्रभुत्व नहीं है। जब कि सभी प्राणियों के देह में निवास करने वाला यह आत्मा सदा-सर्वदा अवध्य है। इसका किसी भी काल में वध नहीं हो सकता।

इस प्रकार आत्म-तत्त्व की नित्यता तथा सर्वव्यापकता आदि सिद्ध करना और उसको प्राप्त करने का उपाय बताना तथा संसार में रहते हुए भी व्यक्ति कैसे सुखी या निर्लिप्त रह सकता है, इसका मार्ग बताना ही गीता का प्रयोजन माना जा सकता है।

– प्रिंसीपल, आर्ट्स एवं कॉमर्स कॉलेज, भीलोडा, जि. सा. का. (उत्तर गुजरात)

श्रीमद्भागवत गीता में विवशता-दर्शन

– श्री गोपाल जी गुप्त

मानव जीवन एक गूढ़ पहेली है उसे न अपने उद्‌गम का ज्ञान होता है न तिरोभाव का। जन्म, शैशव, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, वार्धक्य तथा मृत्यु यह उसका एक क्रम है। कालचक्र अनवरत चलता रहता है और अन्ततः वह मृत्यु की गोद में चला जाता है। धृतराष्ट्र ने संजय से कहा था–कोई भी न ब्रह्मचर्य से न वेदाध्ययन से, न कर्मानुष्ठान से, न अस्त्रों से मृत्यु को टाल सकता है।

न ह्येव ब्रह्मचर्येण न वेदाध्ययनेन च।
न क्रियाभिर्न चास्त्रेण मृत्युः कैश्चिन्निवार्यते॥

अनन्त ब्रह्माण्ड में मनुष्य का अस्तित्व नगण्य है। मनुष्य जीवन के संबंध में ही नहीं मृत्यु के सम्बन्ध में भी विवश है, उसका जीवन जल के बुदबुद् के समान अनित्य है। (**अहो ह्यनित्यं मानुष्यं जलबुदबुद्‌चंचलं** महाभारतद्रोण-पर्व)। मनुष्य योजनायें बनाता है, सुनहले स्वप्न देखता है, श्रम करता है और अकस्मात् काल-कवलित हो जाता है।

गीता में अनेक स्थलों पर विवशता की झलक दिखती है। मृत्यु की अनिवार्यता बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु अपरिहार्य है। **जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च** (गीता-2/27)। मनुष्य किसी भी स्थिति में कर्म किये बिना नहीं रह सकता यह उसकी विवशता है (गीता-3/5)। प्रत्येक प्राणी कर्म न छोड़ पाने के लिए परवश है। **न हि देह-भृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।** (18/11) सांख्यदर्शन के अनुसार मनुष्य प्रकृति के हाथों का खिलौना है। सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के तीन गुणों द्वारा किये जाते हैं, किन्तु मनुष्य अहंकारवश स्वयं को कर्त्ता मान लेता है (गीता-3/27-30)। समस्त प्राणी स्वभाव से परवश हो कर कर्म करते हैं, ज्ञानी भी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है फिर इसमें किसी का हठ क्या करेगा अतः उसे इन्द्रियों के भोग में स्थित रागद्वेष के वश में नहीं होना चाहिए (गीता-3/33-34)। सृष्टि की समस्त क्रियायें प्रकृति संचालित करती है और जीव परवश हो कर क्रिया करता है। प्रकृति के वश में भूत समुदाय उत्पन्न हो कर उसी में लीन होता है– **भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।** (गीता-8/19) ईश्वर अपनी त्रिगुणमयी माया को अंगीकार करके इस प्रकृतिवश-परतंत्र भूत को बारम्बार रचता है। (गीता 9/8)

श्रीकृष्ण प्रकृति तथा स्वभाव की विवशता का वर्णन करते हुए अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन तू जो अहंकार के कारण कहता है कि तू

युद्ध नहीं करेगा तेरा यह निश्चय मिथ्या है क्योंकि तेरा स्वभाव तुझे युद्ध करने को विवश करेगा क्योंकि तू स्वाभाविक कर्म से बंधा है अतः पराधीन तथा विवश हो कर तू युद्ध से विरत नहीं हो सकता (गीता 18/59-62) ।

श्रीकृष्ण ने कर्मफल प्राप्ति की विवशता की चर्चा करते हुए कहा

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥

(2/47)

हे अर्जुन तेरा मात्र कर्म करने का अधिकार है फलप्राप्ति पर नहीं। अतः तू फल की आशा त्याग कर समभाव का आश्रय ले। यहाँ भी विवशता की चर्चा है, जो बताती है कि मनुष्य को मात्र कर्त्तव्य कर्म का पालन करना चाहिए। किन्तु गीता में ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समस्त विवशताओं से जूझने का मार्ग भी बताया है – अपने आप द्वारा अपना संसार-सागर से उद्धार करे, और अपने को अधोगति में न डाले क्योंकि यह मनुष्य आप ही अपना मित्र और शत्रु है। जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है उसके लिए वह आप ही शत्रु के सदृश शत्रुता में वर्तता है।(गीता 6/5-6) अन्य शब्दों में ही श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदिष्ट करते हैं कि प्रकृति भले ही कितनी बलवती क्यों न हो मनुष्य के लिए यह शक्य है कि वह उसे जीत कर आत्मोन्नति करे तभी उसका कल्याण है।

श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास ने भी यही कहा है कि मनुष्य स्वयं ही अपना गुरु होता है क्योंकि वह प्रत्यक्ष एवं अनुमान के आधार पर स्व-हित समझ सकता है। सुख-दुःख अयाचित आ जाते हैं अतः इस विवशता में मात्र सुख के लिए दैन्यता क्यों तथा किस लिए ?

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः।
यत् प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविन्दते॥
अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम्।
सुखानि च तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते॥

उल्लेख है कि विवशता-दर्शन जीवन दर्शन का एक उपेक्षित किन्तु प्रमुख अंग है, जो हमें भौतिक जगत् की अस्थिरता, नश्वरता, घटनाओं की अनिश्चितता के बावजूद विषमताओं में समभाव से जीना सिखाता है।

– प्रेमांगन, एम आई जी 292, कैलास विहार, आवास विकास योजना 1,
कल्याणपुर, कानपुर- 208017

गीता में ईश्वरवाद

– श्री ताराचन्द आहूजा

भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्यवाणी से निःसृत श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम बारह अध्यायों में उनकी कर्म तथा ज्ञान विषयक अवधारणा दृष्टिगोचर होती है किन्तु तेरहवें अध्याय में परमात्म-तत्व का निरपेक्ष वर्णन मिलता है। गीता में निरूपित ईश्वरतत्व की अवधारणा में यह स्पष्ट होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण को परमेश्वर का वही स्वरूप मान्य है जो वेद, उपनिषद् तथा वैदिक दर्शन में प्रतिपादित है। गीता के तेरहवें अध्याय में श्रीकृष्ण सर्वथा तटस्थ होकर ब्रह्म के विषय में कहते हैं कि – जो जानने योग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त होता है, वह अनादितत्व परब्रह्म ही है।[1] वह परब्रह्म न तो सत् है और न असत्। ज्ञातव्य है कि वेद तथा उपनिषद में अमृत को मोक्ष का पर्याय बताया गया है तथा ऋग्वेद का नारदीय सूक्त भी सत् तथा असत् अर्थात् कारणरूप प्रकृति तथा कार्यरूप सृष्टि का ही विवेचन करता है। ईश्वर की सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण अगले तीन श्लोकों में कहते हैं कि – परब्रह्म सब ओर हाथ-पैर वाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुख वाला तथा सब ओर कान वाला है, क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है (13/13)। आकाश जिस प्रकार वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का कारणरूप होने से उनको व्याप्त करके स्थित है, वैसे ही परमात्मा भी सबका कारणरूप होने से सम्पूर्ण चराचर जगत् को अपने भीतर व्याप्त करके स्थित है। इन्द्रियों से रहित होते हुए भी यह सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है तथा आसक्ति रहित होने पर भी सबका धारणपोषण करनेवाला और निर्गुण होने पर भी गुणों को भोगने वाला है (13/14)।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि वह परब्रह्म ईश्वर सृष्टि के सब भूतों के बाहर-भीतर परिपूर्ण है तथा चर-अचर भी वही है और सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है अर्थात् जानने में नहीं आता है। जैसे सूर्य की किरणों में स्थित हुआ जल सूक्ष्म होने से साधारण मनुष्यों के जानने में नहीं आता है, वैसे ही सर्वव्यापी परमात्मा भी सूक्ष्म होने से साधारण मनुष्यों के संज्ञान में नहीं आता है। वह परमात्मा सर्वज्ञ, परिपूर्ण और सबका आत्मा होने से अत्यन्त समीप है, साथ ही श्रद्धारहित तथा अज्ञानी पुरुषों के लिए न जानने के कारण बहुत दूर भी है (13/15)। जैसे महाकाश विभाग रहित स्थित हुआ भी प्रत्येक कलश में पृथक्-पृथक् प्रतीत होता है, वैसे ही परमात्मा सब भूतों में

1. ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥ 13/12

एकरूप से स्थित हुआ भी पृथक्-पृथक् की भांति प्रतीत होता है। वह जानने योग्य परमात्मा विष्णुरूप से भूतों को धारण करनेवाला और रुद्ररूप से संहार करने वाला तथा ब्रह्मारूप से सबको पैदा करने वाला है (13/16)। अगले श्लोक में भगवान् कहते हैं कि वे परब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति एवं माया से अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जानने के योग्य एवं तत्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है और सबके हृदय में विशेषरूप से स्थित है-

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ [2]

परात्पर परमात्मा के कुछ गुणों और विशेषताओं की गणना करने वाला बाईसवां श्लोक कहता है कि वह परमात्मा जीवों के कर्मों का द्रष्टा है। वह जीव की भांति कर्ता नहीं है, वह अनुमन्ता है। जीवों को शुभकर्म करने में सम्मति देता है, संसार का भरण करनेवाला होने के कारण भर्ता है, पालक होने के कारण भोक्ता भी है। ब्रह्मा आदि का भी स्वामी होने के कारण महेश्वर और प्रत्येक जीव की आत्मा में स्थित होने के कारण यह तत्व परमात्मा के नाम से पुकारा जाता है। इकत्तीसवें श्लोक में भगवान् कहते हैं कि अनादि और निर्गुण होने से वह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित होने पर भी वास्तव में न तो कुछ करता है और न लिप्त ही होता है। जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिप्त नहीं होता, वैसे ही देह में सर्वत्र स्थित आत्मा निर्गुण होने के कारण देह के गुणों से लिप्त नहीं होता। परमात्मा की मीमांसा वाले इस विषय को पन्द्रहवें अध्याय में भी उठाया गया है जिसके चौथे श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं -हमें उस परमपद की तलाश करनी चाहिए जिसे प्राप्त कर हम जीवन-मरण के चक्र से छूट जाएं। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए हम उस परम पुरुष परमात्मा की शरण में जाएं जिससे यह सनातन सृष्टिचक्र चल रहा है।[3]

भगवान् आगे कहते हैं कि उत्तम पुरुष जो परमात्मा है वह प्रकृति तथा जीवात्मा दोनों से भिन्न है। यह ईश्वर संज्ञक परम सत्ता लोकत्रय अर्थात् पृथ्वी, द्युलोक तथा अन्तरिक्ष को अपने भीतर समाविष्ट कर उनका भरण-पोषण करती है। यहां परमात्मा को तृतीय पुरुष के रूप में वर्णित किया गया है। अट्ठारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं- वह ईश्वर ही अपनी माया से कर्मानुसार भ्रमण कराता हुआ समस्त प्राणियों के हृदयपटल में विराजमान है।[4] जिस प्रकार कल-कारखाने के प्रधान यंत्र को चलाने से उसकी अन्यान्य मशीनें स्वतः चल पड़ती हैं, इसी प्रकार वह सर्वभूत परमात्म-शक्ति संसाररूपी कारखाने

2. गीता, 13/17

3. ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
    यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
  तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
    यतः प्रवृतिःप्रसृता पुराणी॥ 15/4

4. गीता, 18.61.

का संचालन कर रही है अर्थात् उसी परमात्मा की शरण में जाने का निर्देश श्रीकृष्ण देते हैं। गीता के अगले श्लोक में वे कहते हैं[5]– हे भारत! तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा। उस परमात्मा की कृपा से ही तू परमशांति तथा सनातन परम धाम को प्राप्त होगा। लज्जा, भय, मान, बड़ाई और आसक्ति को त्यागकर एवं शरीर एवं संसार में अहंता और ममता से रहित होकर केवल एक परमात्मा को ही परम आश्रय, परमगति और सर्वस्व समझना तथा अनन्यभाव से अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमपूर्वक निरंतर भगवान् के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूप का चिंतन करते रहना एवं भगवान् का भजन, स्मरण करते हुए ही उनकी आज्ञानुसार कर्तव्य कर्मों का निःस्वार्थ भाव से केवल परमेश्वर के लिए आचरण करना, यह सब प्रकार से परमात्मा के ही शरण होना है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपनी शरण में आने को न कहकर उस परमात्मा की ही शरण में आने को कहा है। उसके शरणागत होने से ही जीवात्मा को उत्तम कोटि की शांति प्राप्त हो सकती है। **यही गीता का ईश्वरवाद है।** उनके अन्य अहम्परक कथन जहां मा, मामे, मेरा, मया, यत्, मय, मयि आदि विभक्तियों का प्रयोग हुआ है, वह उनकी योगारूढ़ स्थिति में कहा गया वक्तव्य है जैसे कि वे गीता के अंतिम अध्याय के कुछ श्लोकों में कहते हैं।

हे अर्जुन! तू मुझ में मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐस करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा। मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।[6] अगले श्लोक में वे अर्जुन को पापों से मुक्त करने का वचन देते हुए कहते हैं–

सम्पूर्ण धर्मों अर्थात् समस्त कर्तव्य कर्मों को मुझ में त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर।[7]

– निदेशक, धार्मिक पुस्तकालय, 4/114, एस.एफ.एस., अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर– 302020

---

5. गीता, 18. 62.
6. मन्मना भव मद्भक्तः मद्याजी मां नमस्कुरु।
   मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
   –गीता, 18/65
7. सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
   अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
   – गीता, 18/66

गीता में ध्यानयोग का स्वरूप

–डॉ. शिवानी शर्मा

श्रीमद्भगवद्गीता के गुणगौरव को कौन नहीं जानता है। इसका अपरनाम गीतोपनिषद् भी है।[1] यह न केवल उपनिषदों का ही सार रूप है अपितु वेदों के सार रूप को भी प्रस्तुत करती है गीता।[2] यह भगवान् श्रीकृष्ण योगेश्वर की वंशी का वह मधुर गीत है, जिसकी प्रत्येक ध्वनि सत्य, सुन्दर आदि गुणों से सम्पन्न होकर आध्यात्मिक जीवन को जागृत करती है।[3] गीता के विषय में सर्वत्र लिखा पाया गया कि –

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥[4]

ध्यानयोग –

इसको ध्यानयोग, राजयोग[5], भक्तियोग और उपासनायोग[6] नाम से अभिहित किया गया है। ध्यान द्वारा परमेश्वर से युक्त होने की विधि ही ध्यानयोग है। इसके द्वारा ही मनुष्य को सर्वोच्च आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त होती है। यह ध्यान ही एक ऐसा सोपान है जो जीव को उसकी अधम अवस्था से प्रारम्भ कर पूर्ण आत्मसाक्षात्कार करने तक पहुँचाता है। ध्यानयोग में स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाना अर्थात् बाहर से अन्तर्मुख होना है।

योगशब्द की व्युत्पत्ति एवं उसके प्रकार–

"युज् समाधौ" धातु से घञ् प्रत्यय होने से योग शब्द की निष्पत्ति मानी गई है। जिसका अर्थ चित्तवृत्तियों का निरोध करना है। योग की परिभाषा करते हुए भगवान् पतञ्जलि लिखते हैं कि योगश्चित्तवृत्तिनिरोघः। अतः युज समाधौ, युज संयमने, युजिर् योगे धातुओं से घञ् प्रत्यय के करने पर योग शब्द की व्युत्पत्ति दिखलाई गई है। समरूप परमात्मा के साथ नित्य सम्बन्ध, जैसे– 'समत्वं योग उच्यते' (2.48)। यही अर्थ गीता में मुख्य रूप से आया है। जिसका ध्येय, लक्ष्य केवल परमात्मा में लगने का है अर्थात् जो परमात्मा की प्राप्ति के लिये ही ध्यानयोग करने वाला है, सिद्धियों और भोगों की प्राप्ति के लिये नहीं, उसी को योगी कहा गया है।[7]

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता का यथारूप, श्री–श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद, भूमिका, पृ. 3.
2. संस्कृत निबन्धशतकम्, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, पृ. 16.
3. श्रीहरिगीता, श्री पं. दीनानाथ भार्गव दिनेश, पृ. 19.
4. श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्यम्, श्लोक संख्या–6.
5. पातञ्जलयोगप्रदीप, श्री स्वामी ओमानन्द तीर्थ, पृ. 162.
6. पातञ्जलयोगप्रदीप, श्री स्वामी ओमानन्द तीर्थ, पृ. 140.
7. श्रीमद्भगवद्गीता, साधकसंजीवनी, हिन्दी टीका, स्वामी रामसुखदास, पृ. 431.

गीता में मुख्यरूप से योग का विभाजन इस प्रकार किया है- (क) कर्मयोग (ख) ज्ञानयोग (ग) भक्तियोग। इन तीनों को करणनिरपेक्ष साधन माना है परन्तु 'ध्यानयोग' को करणसापेक्ष साधन माना है। भगवान् श्रीकृष्ण ने कल्याणकारक साधनों के रूप में ध्यानयोग, हठयोग, लययोग आदि का भी वर्णन किया।[8]

महर्षि पतञ्जलि ने भी साधनों के भेद से योग का विभाजन इस प्रकार किया है- (1) राजयोग अर्थात् ध्यानयोग (2) ज्ञानयोग अर्थात् साङ्ख्ययोग (3) कर्मयोग अर्थात् निष्काम कर्म अनासक्तियोग (4) भक्तियोग (5) हठयोग आदि। यहां केवल ध्यान योग के विषय में चर्चा की जायेगी।

ध्यानयोग करने के अधिकारी–

जिसने अपनी इन्द्रिय-तृप्ति हेतु इच्छा को त्याग दिया है। तथा अपने सङ्कल्पों का सर्वथा त्याग कर दिया है। जिसकी न तो पदार्थों में आसक्ति है और न पदार्थों के अभाव में आसक्ति है। जब कोई पुरुष समस्त भौतिक इच्छाओं का त्याग करके न तो इन्द्रिय तृप्ति के लिए कार्य करता है और न सकाम कर्मों में प्रवृत्त होता है तो वह योगारूढ अर्थात् योग में स्थित होने का अधिकारी होता है जैसा कि कहा भी है –

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥[9]

जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है। जो सभी अवस्थाओं में समान भाव रखता है अर्थात् सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर कर्तव्य कर्मों को करता है वही पुरुष ध्यानयोग करने का अधिकारी है।[10]

ध्यानयोग करने की विधि–

जो समता या समबुद्धि कर्मयोग से प्राप्त होती है, वही समता ध्यानयोग से भी प्राप्त होती है। इसलिए ध्यानयोग के लिए प्रेरणा प्रदान कर भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को ध्यानयोग की विधि इस प्रकार बताते हैं। ध्यानयोग का साधक अकेला होकर, एकान्त स्थान में बैठकर, एकाग्रचित होकर आशा और सङ्ग्रह को त्यागकर निरन्तर आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़े।[11] आगे यह भी कहा गया है कि ध्यानयोग का साधक पवित्र स्थान में, जो न अति ऊँचा हो और न अति नीचा। कुश, ऊन का आसन और वस्त्र को बिछाकर उस आसन पर एकाग्र मन से बैठकर इन्द्रियों और चित्त को वश में करके आत्मशुद्धि के लिए योगाभ्यास करे।[12] इसी प्रंसग में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को यह भी समझाते हुए कहते हैं कि-ध्यानयोगी साधक को चाहिए कि वह सिर, गर्दन और धड़ एक सीध में अचल रखकर स्थिर रहकर, इधर-उधर न देखता हुआ, नासिका के अग्रभाग में दृष्टि रखे।[13] इस प्रकार

---

8. श्रीमद्भगवद्गीता, साधकसञ्जीवनी, हिन्दी टीका, स्वामी रामसुखदास, पृ. 432.
9. गीता, 6.4.
10. गीता, 2.48.
11. गीता, 6.10.
12. गीता, 6.11., 12.
13. श्वेताश्वतरोपनिषद्, अध्याय 2.

आसन बिछाने व उस पर बैठने की विधि को बतलाकर सगुण-साकार के ध्यान प्रकार के विषय में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं –

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥[14]

इस प्रकार निरन्तर अपने आप को योग में लगाये हुए तथा मन को वश में किया हुए योगी परमात्मा में स्थित रहने वाली तथा परम निर्वाण को देने वाली शान्ति को प्राप्त होता है।[15]

ध्यानयोग करने का फल –

ध्यानयोग करने से शरीर हल्का हो जाता है, आरोग्य रहता है, विषयों की लालसा मिट जाती है, कान्ति बढ़ जाती है, स्वर मधुर हो जाता है। गन्ध शुद्ध होता है और मल-मूत्र थोड़ा होता है।[16] वह पुरुष सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार ध्यान द्वारा निरन्तर अभ्यास करने से साधक तपस्वियों, ज्ञानियों और कर्मकाण्डियों से भी श्रेष्ठ बन जाता है।[17] इस प्रकार ध्यानयोग के बल से भृकुटी के मध्य में प्राणों को अच्छी प्रकार स्थापित कर, निश्चल मन से स्मरण करता हुआ पुरुष उस दिव्य स्वरूप परम परमात्मा को ही प्राप्त होता है।

जो पुरुष ॐ ऐसे एक अक्षररूप ब्रह्म का ही उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप कृष्ण का चिन्तन करता हुआ शरीर का त्याग करता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है, जिसका वर्णन गीता के आठवें अध्याय में इस प्रकार किया है –

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥[18]

ध्यानयोग की महिमा का वर्णन हठयोग प्रदीपिका में ठीक ही किया है –

राजयोगं विना पृथ्वी राजयोगं विना निशा।
राजयोगं विना मुद्रा विचित्रापि न शोभते॥

राजयोग (ध्यानयोग) के बिना पृथ्वी भी शोभित नहीं होती है। राजयोग के बिना निशा (कुम्भक प्राणायाम) नहीं शोभित होती है। राजयोग के बिना विचित्र मुद्रा भी शोभित नहीं होती है। इस प्रकार गीता में ध्यानयोग का स्वरूप आदर्शरूप में प्रतिपादित किया गया है।

निष्कर्षरूप से लिखा जा सकता है कि भक्ति-ज्ञान कर्म आदि योगों तक पहुँचने के लिए ध्यानयोग एक सोपान है। जिसकी सहायता से साधक बड़ी सरलता से गन्तव्य मार्ग पर बढ़ता हुआ आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कर लेता है।

–राजकीय-स्नातकोत्तर महिला-महाविद्यालय, सैक्टर-42, चण्डीगढ़।

14. श्रीमद्भगवद्गीता, 6.14.
15. श्रीमद्भगवद्गीता, 6.15.
16. श्वेताश्वतरोपनिषद्, 2.13.
17. गीता, 6.46.
18. गीता, 8.13.

श्रीमद्भगवद्गीता में आदर्श मानव की कल्पना

– ठाकुर नरवातसिंह कुमार

श्रीमद्भगवद्गीता जो स्वयं श्रीकृष्ण के मुखारविंद में से निकला अमृत है। महाभारत के युद्ध में जब अर्जुन को कौरव सेना देखकर विषाद हुआ और युद्ध न करने का व्यामोह हुआ तब भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद् भगवद्गीता का उपदेश दिया।

यद्यपि दर्शनशास्त्र, सदाचार-शास्त्र तथा मानव जीवन उपयोगी ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसका वर्णन गीता में न हो। किन्तु आदर्श मानव की कल्पना के बारे में जब बात करते हैं तो हमें गीता में आदर्श जीवन के अनेक उत्तम उदाहरण मिलते हैं, जो आज के मानव को प्रेरणा देते हैं। इस दिशा में श्रीमद्भगवद्गीता में तीन भक्तों की बात कही गई है 1. स्थितप्रज्ञ 2. भगवद्भक्त 3. त्रिगुणातीत।

1. स्थितप्रज्ञ –

गीता के दूसरे अध्याय के श्लोक 54 से 72 में स्थितप्रज्ञ के लक्षणों की बात बताई गई है। जो आज के मानव के लिए उपयोगी है। **स्थितप्रज्ञ अर्थात् स्थिता प्रज्ञा यस्य सः** अर्थात् जिसकी प्रज्ञा (बुद्धि) स्थिर हुई है वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। स्थितप्रज्ञ के बारे में अर्जुन द्वारा किए गए प्रश्न का उत्तर देते हुए स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताते हुए कहते हैं कि –

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥
(2/55)

हे अर्जुन! जब मनुष्य अपने मन में समाविष्ट सर्ब कामनाओं को निःशेष त्याग करता है और आत्म समाधान से अपने आत्मा में ही संतुष्ट रहता है। तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। ऐसे तो अनेक प्रकार के लक्षण भगवान् ने बताये हैं।[1]

2. भगवद्भक्त –

श्रीमद्भगवद्गीता के बारहवें अध्याय का नाम भक्तियोग है। उसमें उसके शीर्षक के अनुसार भक्ति की महिमा वर्णित हुई है। इस अध्याय में बीस श्लोकों में भगवान् ने भक्ति की महिमा बताई है। इसके अतिरिक्त उसमें भगवद्भक्त के लक्षण भी बताए हैं। भक्तियोग विषय में जब अर्जुन भगवान् से प्रश्न करता है उसका उत्तर देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण संक्षेप से कहते हैं कि –

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥
(12/2)

हे अर्जुन! मेरे में चित्त को स्थिर करके नित्ययुक्त होकर जो उत्कृष्ट श्रद्धा से मुझे भजता है। उन्होंने भक्तियोग को अच्छी तरह से पहचाना है ऐसा मेरा मानना है। उसके आगे भी भगवान् बताते हैं कि–

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥ 12/6

1. गीता, 2.55 से – 1

अर्थात् जो सारे कर्म मेरे में समर्पण करके, मेरे परायण होकर अनन्ययोग से मेरा ध्यान करके मेरी उपासना करता है।

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि मनुष्य सब प्रकार के कर्मों को मुझे अर्पण करता है और किसी भी प्रकार की उपासना न करके सिर्फ मेरा ही ध्यान करता है, उसको मैं मुक्ति देता हूँ। **न मे भक्तः प्रणश्यति** कहकर भगवान् अपने भक्त की भक्ति की महिमा को सर्वश्रेष्ठ बताते हैं।

3. त्रिगुणातीत –

श्रीमद्भगवद्गीता का चौदहवां अध्याय गुणत्रयविभागयोग है। उस अध्याय के शीर्षक के अनुरूप उसमें तीन शब्द हैं। प्रथम गुण, द्वितीय त्रय और तृतीय विभाग। गुण=सत्व, रजस, तमस, त्रय= तीन, विभाग= इन तीनों का पृथक्वीकरण। इस अध्याय में भगवान् ने अर्जुन को सत्व, रजस और तमस इन तीनों गुणों के बारे में उपदेश दिया है। सत्व गुण निर्मल है, निर्दोष है। वह जीवात्मा को सुख की आसक्ति से बंधन में रखता है। रजस् गुण कर्म की आसक्ति से मनुष्य को बंधन में रखता है। तमस् गुण अज्ञान से उत्पन्न होता है। वह मनुष्य को मोह के मायाजाल में फंसाता है। वह प्रमाद, निद्रा और आलस्य से मनुष्य को बंधन में रखता है।

भगवान् अर्जुन को ये तीनों गुणों से रहित बनने का उपदेश देते हैं। ये सब गुण बंधनरूप हैं। इसलिए किसी भी प्रकार की परिस्थिति में एकसमान ही रहना चाहिए। वे कहते हैं कि–

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥ 14/23

जो उदासीन रहकर गुणों से विकार प्राप्त नहीं करता और गुण ही कर्ता है ऐसा मानकर जो किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति नहीं करता।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को ये तीन गुणों के बारे में बताते हैं। यह तीनों गुण वैसे तो बंधनरूप हैं, लेकिन भगवान् अर्जुन को जिस प्रकार बताते हैं कि गुणा गुणेषु वर्तन्ते। अर्थात् गुण ही कर्ता हैं। ऐसा मानकर जो स्थिर रहता है। वही त्रिगुणातीत कहलाता है। उसे किसी भी प्रकार का दुःख नहीं होता।

आदर्श मानव के रूप में अर्जुन –

श्रीमद्भगवद्गीता का अर्जुन एक आदर्श व्यक्ति है। जिसमें अनेक प्रकार के गुण हैं। जैसे कि विचारशील, आदर्श शिष्य, जिज्ञासु, कर्तव्यनिष्ठ.............ऐसे अनेक गुणों से अर्जुन विभूषित है। आज के मानव के लिए अर्जुन एक प्रेरणा के स्रोत हो सकते हैं क्योंकि अर्जुन एक आदर्श शिष्य भी है।

गीता का उपदेश देने के बाद भी अंत में श्रीकृष्ण अर्जुन को यही कहते हैं कि मैंने तुझे मार्ग बताया, अब तुझे इस पर चलना है या नहीं चलना वह निर्णय तेरा ही काम होगा। इस प्रकार अपने शिष्य को पूरी स्वतंत्रता भी देते हैं। इस पर अर्जुन कहता है कि प्रभो आपके कथन से मेरा मोह नष्ट हो गया। मैं जो अपने स्वरूप को भूल चुका था या अपने कर्त्तव्य को भूल चुका था। वह मुझे स्मरण हो गया। अब मैं आपके इस उपदेश से स्थिर हो गया और आपके कथनानुसार आगे का कार्य प्रारम्भ करूंगा अर्थात् युद्ध के लिए तैयार हूँ।

– बी-24, पुरुषोत्तम पार्क सोसायटी, नज़दीक न्यू लिटल फ्लॉवर स्कूल,
चाँदखेड़ा एस. ए., अहमदाबाद (गुजरात)

गीता में आहार-संहिता

–डॉ. जसबीर चावला

गीता सर्वज्ञानमयी है। आध्यात्मिक उन्नति के लिये सर्वश्रेष्ठ जीवन-दर्शन की इसमें मीमांसा की गई है। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग इत्यादि मार्गों द्वारा मोक्ष की प्राप्ति का पथ-निर्देश तो है ही, साथ ही मनुष्य को लौकिक आचरण में कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान भी कराती है गीता।

इस जगत् में सर्वाधिक सरल काम यदि कोई हो सकता है तो वह है खाना..... पीना। यही सबसे पवित्र कार्य भी है जिससे जीवन की रक्षा होती है। परंतु, दुःखपूर्ण तथ्य यह है कि इसी कार्य को अधिसंख्य अविवेकपूर्ण ढंग से करते हैं। क्या, कब, कितना, किस तरह खाना चाहिये इस पर बिना विचार किये अधितर लोग बस इसे एक उदर-पूरक सहज क्रिया की तरह लेते हैं। नई पीढ़ी तो और भी लापरवाही बरत पाश्चात्य जीवन-शैली के रंग में विभिन्न बीमारियों का घर बनती जा रही है। आधुनिक डॉक्टर कई प्रकार के परामर्श देते नहीं थकते जिसमें कई तरह के प्रोटीन, मिनरल, फैट, कोलेस्टोरल वगैरह-वगैरह के सिद्धान्त प्रतिपादित कर साधारण शिक्षित से लेकर महान् बुद्धिजीवियों तक को कर्त्तव्य विमूढ़ कर दिया जाता है। भारतवर्ष की बड़ी जनसंख्या जबकि दारिद्य काटती भक्ष्य-अभक्ष्य के पचड़ों से डरती मात्र इसलिये खाती है, क्यूँकि भूख लगी है, पेट के गड्ढे को भरना है। जूठा, बासी, सड़ा-गला जो प्राप्त हो मुफ्त में, जब खाने को मिले खा आशीष देती है। रोज रेडियो यह विज्ञापन देते नहीं शर्माता कि भारतवर्ष में हर चौथे बच्चे में से एक कुपोषण का शिकार है। हमारी भारतभूमि जबकि सुजला-सुफला शस्यश्यामला है, स्वर्ग के देवताओं को भी लालायित करती है। तो यह विरोधाभास क्यों है? क्योंकि हमने अपने महान् ग्रन्थों को मात्र धर्म-किताबें समझकर उनकी अवहेलना की है। जबकि उनमें हमारे दैनन्दिनी जीवन को सुखमय एवं समृद्ध बनाने वाले नियम बताये गये हैं। इस दृष्टिकोण से गीता में प्रतिपादित भोजन-संबंधी नियम वैज्ञानिक हैं और समस्त विश्व के लिये अनुकरणीय हैं।

खाने-पीने के बारे अंग्रेजी में एक बात सुनने को मिलती है कि Eat for living, not live for eating अर्थात् जिंदा रहने के लिये खाओ न कि खाने के लिये जिंदा रहो। संसार तो खाद्य पदार्थों से भरा पड़ा है। मनुष्य को विवेक से काम लेना चाहिये कि कितनी मात्रा में और कब क्या खाना चाहिये ताकि अपना शरीर स्वस्थ रहे और दीर्घायु तक काम करता रहे। चूँकि विभिन्न भौगोलिक परिवेश और परिस्थितियों में खाद्य पदार्थ विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं, हर वस्तु हर स्थान पर

उपलब्ध नहीं भी हो सकती तथा विभिन्न जलवायु आदि की स्थितियों में मानव शरीर को जिंदा रखने के लिये आवश्यकतायें भी भिन्न हो सकती हैं अतः आहार संबंधी कोई सार्वभौम सूची जारी करना असंभव है। इसी प्रकार पूरे विश्व के लिये एक समान भोजन-तालिका बनाना अनुचित ही होगा।

गीता में ऐसी किसी सूची का उल्लेख तो नहीं है। पर वैज्ञानिक ढंग से जिस आहार-संहिता को समझाया गया है वह सहज ही अनुकरणीय है। संकटकालीन परिस्थितियों में तो पहला धर्म प्राण-रक्षा का है, अतः जो भी देश काल के अनुसार उचित हो कर लेना चाहिये। परन्तु सामान्य परिस्थितियों में पहला नियम यही है कि अति से बचना चाहिये। खाना और सोना दोनों नियमित एक ही समय और एक ही परिमाण में हों तो अत्युत्तम! इस ओर संकेत किया गया कि-

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥

(6-16)

अतः दोनों अतियों से बचना चाहिये, बहुत कम भी नहीं, बहुत ज्यादा भी नहीं। समुचित आहार गुणकारी है -

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

(6-17)

जहां तक प्रश्न है क्या खायें, क्या नहीं तो सर्वप्रथम चार प्रकार के खाद्य पदार्थों का उल्लेख गीता में है-

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

(15-14)

चबाये जाने वाले (भोज्य), निगले जाने वाले (पेय), चाटे जाने वाले (लेह्य) तथा चूसे जाने वाले (चोष्य) खाद्य पदार्थों की सूची देना यहां आवश्यक नहीं क्योंकि हम सभी इनसे परिचित हैं और इनका सेवन ऋतु तथा स्वादानुरूप करते ही हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात जो श्लोक में बतायी गई है वह है खाने को पचाना। अमाशय में जो अग्नि प्रज्वलित हो रही है जो हर प्रकार के खाद्य को पचाने के लिये आवश्यक है वह वैश्वानर है, ईश्वरीय है। जिस शरीर में उसका अभाव है वह सब कुछ पचा नहीं सकता। खा सकता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपने शरीर की आयु और अवस्था के अनुरूप स्वयं ही अनुभव करना चाहिये कि मुझे किस मात्रा में किस प्रकार का अन्न ग्रहण करना चाहिए।

गीता में मनुष्य की प्रवृत्ति के अनुरूप उसकी रुचि के पदार्थों का वर्गीकरण सात्विक, राजस और तामस आहार के रूप में किया गया है। 'जैसा अन्न वैसा मन' भारत में प्रचलित लोकोक्ति है, वह गीता में विदित आहार-संहिता का सार ही है। प्रकृति त्रिगुणमयी है और ये तीनों गुण ही मानव अस्तित्व को बाँधते हैं-

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥
(14-5)

आयु, सत्त्वबल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले एक रसपूर्ण, स्निग्ध, सारपूर्ण पदार्थ सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।[1] इसी प्रकार जो राजसी प्रकृति के हैं उन्हें कड़वे, खट्टे, मसालेदार, चटपटे, खूब गर्म, तीखे, रूखे पदार्थ अच्छे लगते हैं। ऐसे आहार दुःख, चिंता तथा रोगों को उत्पन्न करते हैं।[2] अनियमित और अधिक मात्रा में भोजन करना शरीर के लिये तो हानिकारक होगा ही मनुष्य की मानसिक प्रवृत्तियों को भी राजसी बना डालता है। यदि तामसिक भोजन की चर्चा करें तो श्लोक 17-10 के अनुसार अधपका, जूठा, बासी, दुर्गन्धयुक्त भोजन तामस व्यक्ति को प्रिय होता है।

अच्छे व्यक्तित्व के लिये सात्विक गुणों की अधिकता होनी चाहिये जो सात्विक खाद्यपदार्थ खाने से प्राप्त होते हैं। राजसी और तामसी भोजन यदि रुचिकर लगने लगें और व्यक्ति स्वाद इंद्रिय के वशीभूत इनका नियमित सेवन करने लगे तो कालांतर में उसका स्वभाव और प्रवृत्तियां उसी तरह की बनने लगती हैं। वह स्वयं तो दुःख भोगता ही है अपने कुकृत्यों से समाज और परिवार के दुःख का कारण भी बन जाता है।

संक्षेप में, लिखा जा सकता है कि गीता में दी गई आहार-संहिता को समझकर व्यक्ति चुनाव कर सकता है कि वह क्या चाहता है? जैसा लिखा जा चुका है। भोज्यपदार्थ सात्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार के होते हैं। जो जिस प्रकार का भोजन करेगा उस की प्रवृत्ति उसी प्रकार की होगी। प्रवृत्ति के अनुरूप उसका भविष्य भी उसी प्रकार का होगा। इसी वस्तु को दिखाते हुए गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि यह स्पष्ट है कि जो जैसी प्रवृत्ति का होगा उसकी गति बाद में उसी प्रकार की होगी। इसी ओर संकेत करते हुए अन्त में भगवान् निर्णय देते हैं कि-

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥
(14-18)

– 123/1, सैक्टर 55, चण्डीगढ़-160055

1. गीता, 16.8.
2. गीता, 16.9.

श्रीमद्भगवद्गीता के अद्भुत व्याख्याकार –

विद्यारत्न संन्यासी श्री नारायण स्वामी

–डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य ग्रंथ रत्न की टीका परम्परा के अन्तर्गत अमृतसर निवासी श्री नारायण स्वामी (जन्म: 1874, निधन 3-12-1937) जी को भारत के लोग पंचनद विमलभूमि के विश्वविख्यात ईश्वरोन्मत्त गणितज्ञ संतकवि प्रेममूर्ति और ब्रह्ममूर्ति स्वामी रामतीर्थ परमहंस (22-10-1873 – 17-10-1906) के परम पावन विद्वान् संन्यासी पट्टशिष्यरत्न के ही रूप में अधिक जानते हैं।

आप का स्वाध्याय इतना गहन था कि विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा न पाकर भी आप विश्वविद्यालय स्तर के विषयों में गहरी रुचि एवं अधिकार रखते थे। आप अपने बड़े भाई की देख-रेख में डी.ए.वी कॉलेज लाहौर में शिक्षा पाकर चीफ कोर्ट में नौकर हो गए। उन्हीं दिनों सन् 1899 ई. में आप को गणितशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र के विलक्षण प्रोफेसर गोस्वामी तीर्थराम एम.ए. का हृदयग्राही व्याख्यान 'कृष्णभक्ति' पर सुनने को मिला। फिर तो आप उनके मुरीद हो गए। 'कृष्ण' और 'गीता' पर गोस्वामी तीर्थराम के व्याख्यानों का जो प्रभाव नारायणदास पर हुआ उससे उनके कृष्ण-लीला, भगवद्गीता संबंधी विचारों में आमूल परिवर्तन आया। ईश्वरीय प्रेम उनके हृदय में हिलोरें मारने लगा। जिसने अन्त में उन्हें गोस्वामी जी के चरणों में ला डाला। एक आध्यात्मिक दीपक की ज्योति से दूसरा दीपक प्रज्वलित हो गया। आप का निर्मल चरित्र, सुन्दर आचरण और सात्विक विचार अनुकरणीय थे।

स्वामी रामतीर्थ ने नारायण स्वामी के अन्तःकरण में भी परमात्मा के अखण्ड विश्वास की प्रचण्ड ज्योति प्रज्वलित कर दी थी। परिणामस्वरूप वे भी स्वामी की ही भांति द्रव्य अपने हाथ से स्पर्श तक नहीं करते थे। सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही उनके साहूकार थे। सारी यात्रा में वह अद्भुत साहूकार उनकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहा।

तो हाँ, 'ग्रंथ' ग्रंथकार के हृदय का प्रतिबिम्ब है। जगन्नियन्ता की इस नश्वर सृष्टि में जितने ग्रंथ-कर्ता हुए हैं, उनकी पुस्तकों के पठन, मनन तथा अध्ययन करने से उनके उपदेश तथा उद्देश्य ही नहीं वरन् उनकी संक्षिप्त जीवनी भी स्वयं ही मानस-पटल पर अंकित हो जाती है। देश के अनुपम उपकारी स्वामी जी के लिए भक्तों का यह उद्गार मृषोद्य नहीं है, सत्यवाक् है–

डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'

प्रेम भरा था जीवन उनका, प्रेम भरे थे मीठे बोल।
प्रेम भरे थे नयन मनोहर, जीवन को करते अनमोल॥

उल्लेखनीय है कि फरवरी, 1902 में फैजाबाद (उ.प्र) की 'साधारण धर्मसभा' के द्वितीय वार्षिक उत्सव पर स्वामी राम के आदेशानुसार नारायण जी ने 'आत्मा' के सम्बन्ध में सारगर्भित प्रवचन देकर श्रोताओं में विस्मय-जनक स्थिति पैदा कर दी। सभी भावविभोर हो गए। स्वामी जी का भाषण सुनकर सर्वाधिक प्रभावित हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि लखनऊ पहुँच कर स्वामी राम बाबू गंगा प्रसाद वर्मा के आलीशान महल में नारायण का शिखा-सूत्र का त्याग कर गैरवे वसन धारण कर 'सर्वस्व त्यागी संन्यासी' बना कर आज्ञा दी और कहा, ''सिन्ध में जाकर धर्मप्रचार करो।''

33 वर्ष में दिनांक 17-10-1906 ई. को वेदान्तमूर्ति आधुनिक रामबादशाह स्वामी रामतीर्थ ने टिहरी (मध्य हिमालय) के समीप गंगा की शाखा भिलंगना नदी के तट (सेमलासु में) में स्नान करने के बहाने नाटकीय ढंग से जल समाधि ले ली। आप ने अपने गुरु के वियोग में हिमालय के वनों में, शान्त एकान्त रमणीय वातावरण 'बी' नामक अरण्य में सन् 1909-1912 ई. के मध्य वेदोपनिषद् तत्व-सार-धारिणी लोकोद्धारिणी श्रीमद्भगवद्गीता की सर्वोत्कृष्ट विस्तृत व्याख्या लिखी। उन्होंने अपनी अमृतमयी लेखनी से तीन खण्डों में श्री-मद्भगवद्गीता पर अद्भुत व्याख्या कर अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। 'श्रीमद्-भगवद्गीता' की व्याख्या का प्रथम खण्ड सन् 1916 में प्रकाशित हुआ था, दूसरा खण्ड 1928 में प्रकाशित हुआ था। तीसरा खण्ड उनके निधन के उपरान्त 1942 ई. में प्रकाशित किया गया।

विद्या के स्वामी श्रीनारायण स्वामी ने 'श्रीमद्भगवद्गीता' की प्रस्तावना में लिखा है कि ''हिन्दू धर्म-ग्रंथों में 'श्रीमद्भगवद्गीता' वास्तव में एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है, जो आत्मविद्या के गूढ़ और पवित्र तत्वों को स्पष्ट रूप से प्रकाशित करके पुरुष को पूर्णज्ञान और शान्ति देने वाला है। संस्कृत की तो कौन कहे, समस्त संसार के साहित्य में भी गीता के समान बालबोध ग्रंथ कोई और दिखाई नहीं देता। केवल काव्य की दृष्टि से ही यदि इसकी परीक्षा की जाय, तो भी यह ग्रंथ उत्तम काव्यों में गिना जा सकता है, क्योंकि इसमें आत्मज्ञान के कई गूढ़ सिद्धान्त ऐसी सरल भाषा और रीति से लिखे गये हैं कि बूढ़े से बच्चा तक उनको सुगमता पूर्वक समझ सकता है। वास्तव में पूछो तो जिस ग्रंथ में समस्त वैदिक धर्म का सार स्वयं भगवान् (कृष्णचन्द्र) के मुखारविन्द से सरल और स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया हो, उसकी योग्यता का वर्णन कैसे किया जा सकता है।

इस प्रस्तावना से प्रभावित होकर श्रीमान् चंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु ने लिखा है कि ''गीता पर इतनी सरल सुबोध, तत्व विवेचन से परिपूर्ण और ज्ञानगर्भित प्रस्तावना एवं व्याख्या हिन्दीजगत् में

दूसरी नहीं है। निःसन्देह गीतातत्त्व के जिज्ञासुओं के लिए गीता–व्याख्या के ये तीनो खंड ब्रह्मलीन श्रीमन्नारायण स्वामी जी का अमर प्रसाद है।''

तो हाँ, स्वामी जी मानव–सेवा और प्रेम के मूर्तिमान् स्वरूप थे। वह प्रायः कहा करते थे– ''यह विस्तृत जगत् मेरा घर है और लोगों की भलाई करना मेरा धर्म है।''

श्रीरामतीर्थ प्रतिष्ठान, अवध सेवा समिति, यू.पी. धर्मरक्षण सभा आदि संस्थाओं के जन्मदाता विद्वान् संन्यासी महात्मा श्रीनारायण स्वामी जी महाराज का तीरसठ (63) वर्ष की आयु में पंजाब प्रान्त के एक धर्मप्राण नगर अमृतसर में जन्म लेकर उसी प्रान्त के दूसरे प्रमुख नगर विद्या की नगरी और पंजाब की तत्कालीन राजधानी लाहौर में महानिर्वाण 3 दिसम्बर, 1937 को सम्पन्न हो गया।

परम पूज्य श्रीनारायण स्वामी विद्या के जहाज तो थे ही लेखनी के भी वे धनी थे। इनकी अमृतवाणी और ओजस्वी लेखनी दोनों ही अध्यात्म के उपदेश में समभावेन गतिशील रहीं। उनकी मानससरिता मेघरहित नील गगन के सदृश निर्मल थी। उनका जीवन अनुकरणीय और चिरस्मरणीय था। सर्वश्रेष्ठ संन्यासी, परमज्ञानी, परम विरक्त श्री स्वामी जी के चरणों में शत्–शत् नमन है।

– निवास–'रामतीर्थ कुंज', ग्राम+पो. राँकोडीह, वाया–कोशी कॉलेज, खगड़िया, जिला–खगड़िया–851205 (बिहार)

भगवद्गीता में वर्णित प्रियभक्त

–प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

श्रीमद्भगवद् गीता एक ऐसा महान् ग्रन्थ है जिसकी मान्यता केवल भारत में ही नहीं अपितु विश्वभर में है, वह भी साधारण जन-समूह में नहीं अपितु विद्वत्-समाज में भी इसको पूर्ण समान प्राप्त है, इसीलिए इसका भाषान्तर रूप हिन्दु समाज के द्वारा तो किया ही गया है, अन्य समाज के विद्वानों द्वारा भी बड़ी श्रद्धा तथा आत्मीयता से किया गया है, वह इसलिए कि गीता किसी एक धर्म की बात नहीं कहती है। इसीसे सभी धर्म वाले इसको सत्यरूप से अपनाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं भी इस ओर संकेत करते हुए कहा है कि– हे अर्जुन! मुझे जो जिस भाव से भजता है, मैं उसके ऊपर उसी प्रकार की कृपा करता हूँ, जिससे वह सर्वदा मेरे समीप पहुँचने के मार्ग पर ही चलता है।[1] इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जो कोई गीता को श्रद्धा और भक्तिभाव से पढ़ेगा या पढ़ता है, उसको उसके प्रश्नों का उत्तर या समस्याओं का समाधान किसी न किसी प्रकार गीता से ही प्राप्त हो जाता है। इसको भगवत् कृपा भी कहा जा सकता है। श्रीकृष्ण ने तो यहाँ तक घोषणा की है कि–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योग-क्षेमं वहाम्यहम्॥[2]

जो भक्त अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करता है उसका योग-क्षेम मैं स्वयं प्राप्त करा देता हूँ अर्थात् जो व्यक्ति भगवान् को समाज से अतिरिक्त नहीं समझता तथा अपने से अतिरिक्त समाज या भगवान् को नहीं समझता, वह अनन्यभाव वाला कहलायेगा। ऐसा होने से जो किसी को भी किसी प्राकर का कष्ट नहीं पहुँचायेगा या परमात्मा को ही सब कुछ समझकर अपने सभी कर्मफलों को भगवद्-अर्पण करेगा उसका योग-क्षेम भगवान् कहते हैं कि मैं खुद चलाता हूँ। श्रीकृष्ण यह भी कहते है कि– हे अर्जुन! यदि कोई श्रद्धापूर्वक अन्य देवताओं की भी भक्ति करते हैं, चाहे वह विधि विहीन ही क्यों न हो, वे भी एक प्रकार से मेरा ही भजन करते हैं।[3] गीता में यत्र तत्र श्रीकृष्ण ने भक्त को पर्याप्त मान्यता प्रदान की है।[4] अर्जुन को तो उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि– हे अर्जुन! तुम मेरे भक्त हो, सखा भी हो, इसीलिए मैं परम्परा प्राप्त योग के गूढ ज्ञान को तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ।[5]

श्रीकृष्ण इस बात से पूर्णतः परिचित हैं कि मुझे किसी एक का पक्ष नहीं लेना चाहिए। वे अपने कर्तव्य को भी भलिभांति समझते हैं, पर भक्त के प्रति थोड़ा उदार होते हुए कह देते है कि– हे अर्जुन! मैं सभी प्राणियों के प्रति एक जैसा ही भाव रखता हूँ। मेरा न कोई शत्रु है और न मित्र पर जो मुझे परम भक्ति भाव से भजते हैं, वे सदा मुझ में वास करते हैं और मैं उनमें। यहां तक कि यदि कोई पापी भी अनन्यभाव से मेरी भक्ति करेगा वह भी पुण्यात्मा हो जायेगा और शान्ति प्राप्त कर लेगा।[6] इससे यह तथ्य निकला कि ईश्वर के प्रति सभी प्रकार से समर्पण भाव रखने वाले भक्तों की दुर्गति नहीं होती। फिर जो पुण्य कर्म करने वाले महात्मा, ज्ञानी, सभी वर्ग के लोग हैं, उनकी

1. गीता, 4.11.
2. गीता, 9.22.
3. गीता, 9.23.
4. गीता, 9.26; 29; 10.34; 13.18; 18.65.
5. गीता, 4.3.
6. गीता, 9,29–33.

उन्नति तो अवश्यंभावी है। यह थी सामान्य बात, पर क्या सभी भक्त भगवान् को एक जैसे प्रिय हैं या उनमें कुछ तारतम्य है। भगवान् कृष्ण यह भी पाठकों के समक्ष स्पष्ट करते हुए अर्जुन को यह बताना नहीं भूलते कि भक्ति से मेरा तात्पर्य यहाँ केवल कोरी भक्ति अर्थात् पूजा मात्र से नहीं है। पूजा-पाठ, ध्यान आदि करने वाला भक्त श्रेष्ठ भक्त तो हो सकता है, पर मेरा प्रिय भक्त नहीं हो सकता।

इसी बात को मन में रखते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को भेद बताते हुए कहते है कि – हे अर्जुन! जो परमेश्वरके सगुण रूप को अपना कर ध्यान करते हैं। अर्थात् सगुण की उपासना करते हैं, वे श्रेष्ठ योगी तो कहलाते हैं, ऐसा मैं समझता हूं।[7] पर वे प्रिय भक्त भी हों ऐसा नहीं माना जा सकता। प्रिय भक्त तो वही हो सकता है जो केवल अपना ही ध्यान न रखे अपितु सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति जिसका सद्भाव हो। केवल पूजा-पाठ कर लेना, भगवान् की आरती उतार लेना या उसकी फोटो सामने रखकर पूजा, अर्चना करने वाला ही ही श्रीकृष्ण के मत से प्रिय भक्त नहीं हो सकता। प्रिय भक्त का आचरण तो भिन्न ही होता है। इसीलिए उनको प्रिय भक्त के विषय में कुछ कहना पड़ा तथा ऐसे भक्त के अनेक लक्षण गिना दिये। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि–हे अर्जुन! श्रेष्ठ भक्तों के विषय में तुम्हें कह चुका हूँ।

अब जो मेरे प्रिय भक्त है, उनके लक्षण भी सुनो – उनमें निम्नलिखित बातें होनी चाहिए – (1) **अद्वेषा** – वह किसी से द्वेष न करता हो, (2) **मैत्र** – सभी के साथ मित्रता का वर्ताव करता हो (3) **करुणा** – उसके मन में सभी के प्रति दया का भाव हो (4) **निर्मम** – दया का भाव होने पर भी ममत्व भाव अर्थात् यह मेरा है, यह मुझे चाहिए इत्यादि भाव उसमें न हो (5) **निरहंकार**–अहंकार रहित हो (6) दु:ख-सुख की अवस्था में समान रहने वाला हो (7) सभी प्रकार से क्षमावान् और (8) सन्तुष्ट रहने वाला हो (9) मन और इन्द्रियों के सहित शरीर को वश में किया हुआ हो (10) परमात्मा में दृढ़ भक्ति रखने वाला हो (11) जो भी कर्म करे, उसके फल की कामना स्वयं न कर भगवद् अर्पण करने वाला हो, (12) सबसे बड़ी बात यह है कि उसके कारण लोगों को उद्वेग न होता हो तथा जो स्वयं भी दूसरे प्राणियों से सद्विग्न न होता हो (13) हर्ष, क्रोध इत्यादि से रहित हो (14) आकांक्षा से रहित और (15) सर्व-प्रकारेण शुद्ध अर्थात् निर्दोष (16) और मध्यस्थ हो (17) किसी भी कर्त्तव्य कार्य को चतुराई से समझने वाला, (18) सभी कर्मों के आरम्भ को त्याग करने वाला (19) मन और बुद्धि से ईश्वरार्पण भाव से कार्य करने वाला (20) नानाविध भोगों की लालसा जिसके मन से समाप्त हो गई हो। इस प्रकार के लक्षणें से मुक्त भक्तिमान् ही भगवान् को परमप्रिय है। यह ध्यान रखना भी परम आवश्यक है कि ये सभी लक्षण जिसमें हो वही भगवान् का प्रिय भक्त माना जायेगा ऐसा नहीं, किन्हीं एक-दो लक्षणों के मुख्य रूप से और अन्य के गौणरूप से होने पर भी वह भक्त भगवान् का प्रिय भक्त कहलायेगा। पाठक इन लक्षणों का अपने ढंग से विचार कर उचित बोधकर प्रिय भक्त की पहचान कर सकते है।[8]

–संचालक, वी. वी. आर. आई., साधु-आश्रम, होशियारपुर।

7. गीता, 12.2.

8. गीता, 12, 13-20.

गीता में कर्म-योग

—श्री अजय कुमार

गीता कृष्ण-अर्जुन के संयोग से आत्मा-परमात्मा के योग का साक्षात् स्वरूप है, सन्देश है। ब्रह्म-प्रकृति के मेल से स्थिर जंगम संसार उत्पन्न होता है। जिसको साक्ष्य करके जो ब्रह्म **'एकोऽहं बहुः स्याम्'** की भावना से माया-अविद्या अवच्छिन्न एक होकर भी बहुत्व में पहुँच गयी थी। उसका छुटकारा ज्ञान और भक्तिरूप कर्मयोग से ही हो सकता है। यह योग-शास्त्र अनेकता में फंसे परमात्मा को फिर से एकता में पहुंचा देता है। जैसे नाना नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किए बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परमशान्ति को प्राप्त होता है, जो भोगों को चाहने वाले हैं वे परम शान्ति को प्राप्त नहीं करते।[1]

कुरुक्षेत्र में युद्ध के लिए खड़े अर्जुन ने जब अपने सामने गुरुजनों और सम्बन्धियों को देखा, तो उसका सोया हुआ अपनत्व जाग पड़ा। किंकर्तव्यविमूढ़ हो सोचने लगा- अपने पूज्य गुरुजनों और भाई-बन्धुओं की हत्या करके उनके रक्त से सने हुए राज्य को लेकर मैं क्या करूँगा? ऐसे राज्य से भीख माँगकर जीवन-निर्वाह करना श्रेयस्कर है। मुझे न विजय चाहिए, न राज्य का सुख।[2] इस प्रकार कर्तव्यपथ से विचलित हुए अर्जुन को वेदव्यास ने श्रीकृष्ण जी से कर्मयोग का जो उपदेश दिलाया, उससे अर्जुन का मोह तो दूर हुआ ही, पर उसके पश्चात् वह अमृतमय उपदेश मानवमात्र के लिए कर्ममय-जीवन का सन्देश बन गया।

गीता में ज्ञान और भक्ति की चर्चा भी हुई है, परन्तु उसका मुख्य विषय कर्मयोग है। श्रीकृष्ण अर्जुन को निवृत्ति-मार्ग की ओर ले जाकर संन्यासी नहीं बनाना चाहते थे। यदि ऐसा होता, तो वे उसे धनुषबाण छोड़कर वन जाने की आज्ञा दे देते। श्रीकृष्ण का उद्देश्य तो उसे स्वधर्म से परिचित करा कर कर्ममार्ग पर लाना था। वे बार-बार उसे युद्ध के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं- अपने क्षात्रधर्म की ओर देखो। डरो नहीं, क्षत्रिय के लिए धर्म-प्राप्त युद्ध से बढ़कर और कुछ हितकर नहीं। अर्जुन! उठो और युद्ध के लिए निश्चय करो। मोह को छोड़कर निरन्तर अपना कर्तव्यकर्म करते चलो।[3]

1. गीता, 2/70.
2. गीता, 2/5;6.
3. गीता, 2/31.

श्रीकृष्ण कर्म के पक्ष में युक्ति देते हुए कहते हैं कि कर्म किए बिना तो मनुष्य क्षणभर के लिए भी रह नहीं सकता।[4] खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना, खेलना-कूदना, हँसना-रोना, देखना-सुनना, मारना-पीटना, पढ़ना-लिखना, ध्यान करना, दान देना, यज्ञ करना, इच्छा करना, यहाँ तक कि सांस लेना - ये सब भी तो कर्म ही हैं। इनमें से कुछ शरीर से किए जाते हैं, कुछ मन से। जब कर्म के बिना जीव की जीवन-यात्रा ही नहीं चल सकती, तो अकर्म का ढोंग क्यों किया जाए? इसलिए गीता में कर्म को अकर्म से महत्वपूर्ण बताया गया है।[5]

कौन-सा कर्म कब किसे करना चाहिए और कैसे करना चाहिए, इसी का निर्णय करना गीता सिखलाती है। श्रीकृष्ण ने कर्म करने की विशेष प्रकार की कुशलता को ही योग कहा है।[6] किसी भी कर्म को करने के कई प्रकार हो सकते हैं। धन कमाना एक कर्म है और इस कर्म को करने के कई साधन हैं जैसे मेहनत-मज़दूरी करना, नौकरी करना, भीख माँगना, चोरी करना आदि। कौन-सा मार्ग अच्छा है, कौन-सा बुरा ? इन बातों को समझने में गीता हमें सहायता देती है।

कर्म के विषय में गीता का एक सुनहरा सिद्धान्त स्वधर्म का है। जिसका जो धर्म है, उसे वह ही करना चाहिए। अपना कर्तव्य-कर्म छोड़ कर दूसरे का कर्तव्य-कर्म करना उचित नहीं होता। चलने के कई रास्ते हो सकते हैं, पर चलना किसी एक से ही होगा, तभी लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। जो कभी एक रास्ते पर चलता है, फिर उसे बुरा कह दूसरा रास्ता पकड़ता है, फिर उसे छोड़ तीसरा मार्ग बदलता है, व अपने लक्ष्य तक कैसे पहुँचेगा ? हर मनुष्य में स्वभाव, गुण और परिस्थिति के अनुरूप कर्म करने की अलग-अलग योग्यता होती है वही उसका अधिकार है। इस अधिकार के अनुसार प्राप्त हुए कर्मों को यथाशक्ति करना स्वधर्म है, जिसे करने से व्यक्ति तथा समाज दोनों का कल्याण होता है। **स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः** का यही भाव है कि जीवन के जिस क्षेत्र में प्राणी स्थित है उसे वह कार्य ईमानदारी से करना चाहिए, चाहे उसे करने में प्राण की बाजी भी क्यों न लगानी पड़े? इस प्रकार यदि समाज का प्रत्येक घटक अपने-अपने धर्म का कर्तव्य-बुद्धि से पालन करता है, तो समाज में सुख शान्ति का साम्राज्य रहता है। जब कुछ लोग ममत्व या द्वेष के कारण कर्तव्य को छोड़ कर अकर्तव्य करने में लगते हैं, तभी अशान्ति होती है।

मनुष्य अपने कर्मों से ही अपनी उन्नति करता है और अपने कर्मों से ही अपनी अवनति की ओर बढ़ता है। कर्म-संन्यास और कर्म-योग की तुलना करते हुए श्रीकृष्ण ने कर्मयोग को संन्यास से बढ़कर बताया है।[7] कर्म तभी बन्धन का कारण

4. गीता, 2/37.
5. गीता, 3/5.
6. गीता, 3/8.
7. गीता, 5/2.

होता है जब उसे स्वार्थ-बुद्धि से फल की आशा रख कर किया जाता है। जब फल की आशा न रखकर निष्काम भाव से कर्म किया जाता है, तब वह बन्धन का कारण नहीं होता। निष्काम कर्म करने वाला संन्यासी और योगी दोनों हैं।[8]

इसी कारण गीता में कहा है कि हे मनुष्य! तेरा अधिकार केवल कर्म करना है। तू फल प्राप्ति के विषय में मत सोच।[9] मनुष्य फल-प्राप्ति की अभिलाषा करे या न करे, फल तो कर्मानुसार मिलेगा ही। अभिलाषा करने या न करने से फल-सिद्धि में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इतना अवश्य है कि फलाशा कई बार कर्म के उचित रूप में सम्पन्न होने में बाधा पहुँचाती है और दुःख का कारण बनती है। परीक्षा-हाल में बैठा विद्यार्थी यदि प्रश्नों के उत्तर लिखते हुए दस बार यही हिसाब लगाता रहे कि उसे कितने अंक प्राप्त होंगे ? वह उत्तीर्ण होगा कि नहीं ? उसका ध्यान उत्तर देने से हटने के कारण उत्तर ठीक प्रकार से नहीं दिए जा सकेंगे, जिसका परिणाम दुःखदायी हो सकता है।

हम प्रायः देखते हैं कि जो डॉक्टर प्रतिदिन कर्तव्य-बुद्धि से अनेक रोगियों की चिकित्सा करता है और उन्हें स्वास्थ्य दिलाता है। वही डॉक्टर अपने बच्चे के अधिक रुग्ण होने पर दूसरे डॉक्टरों-वैद्यों की शरण लेता है, क्योंकि ममत्व-युक्त फलाशा उसे ठीक प्रकार से सोचने नहीं देती, उसे चिन्ता तथा घबराहट में डाल कर निकम्मा बना देती है। परन्तु यदि वह वैराग्यबुद्धि से युक्त हुआ लाभ-हानि, सुख-दुःख को एक-सा मान कर कर्त्तव्य-कर्म करना सीख चुका है, तो उस संकट की घड़ी में भी उसकी बुद्धि ठीक काम करती है। गीता इसी प्रकार का निष्काम कर्म करने को कहती है, जिसे करके मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर लेता है।[10]

– शोध छात्र, वी. वी. बी. आई. एस. एण्ड आई. एस. (पी. यू.), होशियारपुर।

---

8. गीता, 6/1.
9. गीता, 2/47.
10. स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः। गीता, 18/45.

गीता तथा उपनिषत्साहित्य में कर्म शब्द प्रयोग

– श्री विजय कुमार

गीता और उपनिषदों में कर्म शब्द के अनेक प्रयोग देखे जाते हैं। इसीलिए तुलनात्मक दृष्टि से कर्म शब्द का प्रयोग किस प्रकार से हुआ है यह विचार प्रस्तुत किया जाता है। ईशावास्योपनिषद् में कर्म शब्द का द्वितीय मन्त्र में प्रयोग देखा जाता है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा[1]**:....**

जहाँ हमें कर्मों को करते हुए सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करनी चाहिए। वहीं गीता के द्वितीय अध्याय में कर्म शब्द का एक प्रयोग दर्शनीय है – **योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय........।**[2] यहाँ दोनों जगह कर्म शब्द का प्रयोग एक ही अर्थ में तथा एक ही भाव में प्रयुक्त हुआ है। जैसे गीता में कर्मों की आसक्ति का त्याग करके कर्मसिद्धि की बात कही गई है, ऐसे ही गीता में भी निम्न रूप से लिखा है –

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम्॥[3]

यहाँ प्रयुक्त कर्म शब्द का तात्पर्य है कि कर्मों में आसक्त हुए अज्ञानी जन जिस प्रकार कर्म करते हैं, विद्वान् पुरुष भी जो कर्मों में अकर्म और अकर्म में कर्म को जानकर लोक-संग्रह के लिए करते हैं, उसी प्रकार से कर्म करे। किन्तु ध्यान रहे कि ज्ञान में बुद्धि का भेद उत्पन्न न करे –

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।[4]

किन्तु शास्त्र विहित समस्त कर्मों को भली-भाँति करता हुआ उनसे भी वैसा ही करवाये।

जोषयेत्सर्वकमाणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।

यद्यपि सभी कर्म प्रकृति के गुणानुरूप किये जाते हैं, किन्तु अहंकारी व्यक्ति उसमें अहंभाव करता हुआ अपने को उनका कर्ता समझ बैठता है।[5] इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं– सम्पूर्ण कर्मों को मुझ में अर्पण करके आशारहित, ममता रहित और सन्ताप रहित होकर युद्ध कर।[6] यहाँ प्रयुक्त कर्म शब्द यह सूचित करता है कि कर्म शब्द के बहुत से भेद हैं। जो ज्ञान-विज्ञान बुद्धि वाले पुरुष कर्तृत्वबुद्धि भाव से रहित होकर अभिमान छोड़कर आचरण करते ही हैं पर जो अज्ञान से सम्मोहित होते हैं और भगवान् की आराधना करते हैं वे भी मुक्त हो जाते हैं।[7]

जो अज्ञानी पुरुष भगवान् में दोषारोपण करते हुए इस प्रकार से कर्माचरण का, अर्थात् कर्मफल

1. ईशावास्योपनिषद्.....मन्त्र, सं. 2.
2. श्रीमद्भगवद्गीता, 2, 48.
3. श्रीमद्भगवद्गीता, 3, 25.
4. श्रीमद्भगवद्गीता, 3, 26.
5. श्रीमद्भगवद्गीता, 3, 27.
6. श्रीमद्भगवद्गीता, 3, 30.
7. श्रीमद्भगवद्गीता, 3, 31-32.

का त्याग करके कर्मों का आचरण नहीं करता है, वह कर्म प्रयोग के ज्ञान से अनभिज्ञ है। वह सम्मोहित होकर, ममता सम्पन्न, चिन्ता से युक्त कर्मों का आचरण करता है। इस प्रकार से ज्ञानियों और अज्ञानियों के कर्मों के प्रभेदों के रूप में भी कर्म शब्द का प्रयोग हुआ है।

उपनिषद् में कर्म शब्द का प्रयोग –

ईशावास्योपनिषद् के अतिरिक्त मुण्डकोपनिषद् में भी कर्म शब्द के प्रयोग प्राप्त होते हैं। यथा –

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा संततानि तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके।[8]

यहाँ अङ्गिरा शौनक आदि ऋषियों से बतलाता है कि जो नियत कर्म हैं अर्थात् ज्ञान और भक्ति से युक्त जो कर्म हैं मनुष्य यदि सत्य की इच्छा से उनका आचरण करता है तो वही सम्पूर्ण लोक में अच्छी प्रकार कार्य करने वालों का मार्ग है। मुण्डकोपनिषद् में ही कर्म शब्द का प्रयोग इस प्रकार से भी देखा जा सकता है –

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे पराऽवरे॥[9]

यहां कर्म शब्द का प्रयोग हुआ है। जब तक आत्मसाक्षात्कार नहीं हो जाता है तब तक हृदयग्रन्थि का भेदन नहीं होता है। सभी संशयों का छेदन नहीं होता है, परन्तु उसके साक्षात्कार के उपरान्त सभी कार्य सम्पन्न हो जाते हैं, इतना ध्यान रहे कि उसके लिए कर्म सदा बने ही रहते हैं। मुण्डकोपनिषद् के इस मन्त्र को भी देखिये –

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु।
कर्माणि विज्ञानमयश्चात्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति॥[10]

तैत्तिरीयोपनिषद् में कर्म शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर आया है यथा –

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि।[11] **सत्यं वद, धर्मं चर......?**

यहाँ कर्म शब्द से 'अनवद्यानि' यह विशेषण प्रयुक्त है। शिष्ट सम्मति से जितने भी अनिन्दित कर्म हैं उन्हीं का यहाँ भाव प्रतीत होता है। इसी प्रकार से **विज्ञानं यज्ञं तनुते। कर्माणि तनुतेऽपि च।**[12] यहाँ 'यज्ञ' शब्द से और कर्म शब्द से आध्यात्मिक श्रेष्ठ कर्म और लौकिक श्रेष्ठ कर्मों का ग्रहण किया गया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी कर्म प्रयोग दर्शनीय है– यथा – **आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान्विनियोजयेद् यः।**[13] यहाँ गुणों से अन्वित इस विशेषण से सत्व, रजस्, तमस् गुणों का भाव प्रतिपादित है। **यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्य।**[14] इस मन्त्र में भी उसी प्रकार का भाव स्पष्ट है।

छान्दोग्य उपनिषद् में – अतो यान्यन्यानि **वीर्यवन्ति कर्माणि।**[15] यहाँ **अन्यानि वीर्यवन्ति**

---

8. मुण्डकोपनिषद्, 1/2/1.
9. मुण्डकोपनिषद् 2/2/8.
10. मुण्डकोपनिषद्, 3/2/7.
11. शिक्षाध्यायवल्ली–तै. उ. 11वा, अनुवाक
12. ब्रह्मानन्दवल्ली–तै. उ.–पञ्चमऽनुवाक
13. श्वेताश्वतरोपनिषद्–6/4.
14. छान्दोग्य–उ. 6/4/1.
15. छान्दोग्य–उ. 1/5/5.

कर्म शब्द के विशेषण हैं। वहीं इसके लिए इसका उदाहरण भी दिया है। यहाँ बलयुक्त कर्मों का ग्रहण होता है। इसी प्रकार से अन्य मन्त्र में भी कुर्वन्नेवेह कर्माणि.......... तथा योगस्थः कुरु कर्माणि का भाव प्रयुक्त हुआ है-

नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि[16] मन्त्राणां संक्लृप्त्यै कर्माणि संकल्पन्ते[17]

यहाँ कर्म शब्द का प्रयोग मन्त्रप्रोक्त कर्त्तव्य-कर्म को सङ्केतित करता है। **'स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीयेत्यथ कुरुते'[18]** तथा **आत्मतः कर्माणि।[19]** इनमें कर्मों की सत्ता को आत्मा के समान कहा गया है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में – **अथातो व्रतमीमांसा** – कहकर कर्म के प्रयोग को बतलाया है। यथा – **प्रजापतिर्ह कर्माणि ससृजे[20]** यहाँ कर्म शब्द का प्रयोग कर्म साधन इन्द्रियों और उनके कर्म परिणाम से है। वहीं इसी प्रकरण में अन्य प्रकार के कर्मों का भी प्रयोग हुआ है। यथा –

अथ कर्मणामात्मेत्येतदेषा मुक्थमतो हि **सर्वाणि कर्माण्युत्तिष्ठन्त्येतदेषां** सामैतद्धि **सर्वैः कर्मभिः सममेतदेषां ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि कर्माणि बिभर्ति।[21]**

यहाँ उक्थ शब्द का प्रयोग प्राणवाचक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यजुर्वेद के ईशावास्योपनिषत् का मन्त्र गीता के अन्त में कहा गया है –

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्॥[22]

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन करने से स्पष्ट है कि गीता में प्रयुक्त कर्म शब्द जिस प्रकार विशेषणादि भेद, पात्र भेद, अधिकारी भेद आश्रय से विभिन्नार्थ वाचक है इसी प्रकार उपनिषदों में प्रयुक्त कर्म शब्द भी प्रकरण, ज्ञाता ज्ञान आदि भेद से नानार्थक प्रतीत होता है। विभिन्न स्थानों पर इस प्रकार के प्रयोग देखे जा सकते हैं। इस प्रकार की व्याख्या गीता और उपनिषद् की समीक्षा करने पर सभी जगह पात्रभेद से, अधिकारी भेद से प्रतिपादित की गई है।

– शोध छात्र, वी. वी. बी. आई. एस. एण्ड आई. एस. (पी. यू.), होशियारपुर।

16. छान्दोग्य-उ. 7/ 4/ 1.
17. छान्दोग्य-उ. 7/ 4/ 2.
18. छान्दोग्य-उ. 7/ 3/ 1.
19. छान्दोग्य-उ. 7/ 26/ 1.
20. बृहदारण्यकोपनिषद्-1/ 5/ 21.
21. बृहदारण्यकोपनिषद्-1/ 6/ 3.
22. श्रीमद्भगवद्गीता, 18/ 13.

विविध समाचार

- **श्री विश्वनाथ जी को आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा और डी. ए. वी. प्रबन्धक समिति ने आजीवन उपलब्धि सम्मान से विभूषित किया –**

  आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा एवं आर्य युवा समाज, दिल्ली के संयुक्त कार्यक्रम में 18 फरवरी, 2013 को हंसराज माडल स्कूल, पंजाबी बाग, नई दिल्ली में स्वामी दयानन्द जी के जन्मोत्सव पर आयोजित विशेष कार्यक्रम 'उत्थानपर्व' में श्री विश्वनाथ जी को प्रकाशन के क्षेत्र में विश्वस्तरीय मानदण्ड स्थापित करने, पुस्तक प्रकाशन के क्षेत्र में नई क्रान्ति का सूत्रपात करने, शिक्षा-जगत् में विशेष योगदान देने तथा डी. ए. वी. संस्थाओं एवं आर्यसमाज के उत्थान में विशेष सहयोग देने के लिए **आजीवन उपलब्धि सम्मान** से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि श्री पूनम सूरी, प्रधान, डी. ए. वी. प्रबन्धक समिति तथा आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने श्री विश्वनाथ जी को शाल ओढ़ाकर, स्मृति-चिह्न और प्रशस्तिपत्र देकर सम्मानित किया।

- विश्वेश्वरानन्द - विश्वबन्धु - भारतभारती - अनुशीलन - संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर में 4-8 मार्च, 2013 तक 5 दिन महर्षि विश्वामित्र वेद-वेदांग कार्यशाला एवं संगोष्ठी का आयोजन किया गया। कार्यशाला के प्रथम दिन, प्रो. ओ. पी. उपाध्याय, उपकुलपति, गुरु रविदास आयुर्वैदिक विश्वविद्यालय, होशियारपुर ने कार्यशाला का शुभारम्भ किया तथा कार्यशाला के मुख्यअतिथि के रूप में अपना सारगर्भित भाषण दिया। इस अवसर पर सरस्वती-वन्दना के साथ-साथ विभागाध्यक्ष प्रो. प्रेम लाल शर्मा तथा वी. वी. आर. आई के संचालक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल ने अध्यक्षीय भाषण में अपने विचार प्रकट किये।

  इस कार्यशाला का मुख्य विचारणीय विषय था – वेदार्थ-पद्धति। इस विषय को लेकर विभिन्न स्थानों से आये प्राध्यापकों ने अपने-अपने पत्रों को पढ़ा और वेदार्थपद्धति के संबंध में विभिन्न तर्क प्रस्तुत किये। इस संगोष्ठी के अन्तिम सत्र में मुख्य अतिथि के रूप में पंजाब यूनिवर्सिटी के सायंकालीन विभाग के अध्यक्ष, प्रो. बी. के. चोपड़ा तथा पंजाब यूनिवर्सिटी के सिनेटर प्रो. मुकेश अरोड़ा उपस्थित थे।

  इस संगोष्ठी के अतिरिक्त इस अवसर पर विभिन्न विद्यालयों और विश्वविद्यालयों से आये छात्रों को वैदिक विद्वानों द्वारा सस्वर वेद-मन्त्रों के उच्चारण का प्रशिक्षण दिया गया।

14वां राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग सम्मेलन 26, 27, 28 अप्रैल, 2013, रामनगर किला, तह.–आंवला, जिला बरेली (उ. प्र.) –

उत्तरभारत की प्रसिद्ध ऐतिहासिक एवं धार्मिक धरोहर पूरषादानी परमात्मा पार्श्वनाथ भगवान् की तपोभूमि एवं केवल्य ज्ञानभूमि श्री अहिच्छत्रा पार्श्वनाथ, ग्राम– रामनगर किला, तह.– आंवला, जिला बरेली (उ. प्र.) स्थित सोनाजी ट्रस्ट रजि० पानीपत द्वारा संचालित जैन गौशाला के विशाल प्रांगण में ऊर्जा प्राकृतिक चिकित्सा ध्यान केन्द्र एवं कैंसर इन्स्टीट्यूट के नव निर्मित भवन में **14वाँ राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग सम्मेलन 26, 27 एवं 28 अप्रैल, 2013** को आयोजित किया गया।

प्राकृत भाषा के विकास हेतु केन्द्र सरकार के समक्ष प्रस्तुत सुझाव (प्रो. फूलचन्द जैन प्रेमी, सदस्य, राष्ट्रीय संस्कृत परिषद्) –

संस्कृत/प्राकृत/ पालि भाषा के विकास हेतु दिनांक 22.01.2013 को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा गठित ''राष्ट्रीय संस्कृत परिषद्'' की बैठक केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री माननीय श्री एम. एम. पल्लं राजु जी की अध्यक्षता में शास्त्री भवन में आयोजित हुई। जिसमें देश के ख्यातिलब्ध भाषाविद्, देश के सभी संस्कृत विश्वविद्यालयों के माननीय कुलपति एवं सभी संस्कृत अकादमियों के सचिव, उच्च शिक्षा सचिव तथा अन्य अधिकारी सम्मिलित हुए।

इस परिषद् में प्राकृत भाषा की ओर से नामित सदस्य प्रो. फूलचन्द जैन प्रेमी निदेशक, बी. एल. इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी, दिल्ली एवं पालि भाषा की ओर से प्रो. भागचन्द जैन भास्कर, नागपुर सम्मिलित हुए।

सर्वप्रथम इस परिषद् के सदस्य सचिव एवं राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के मा. कुलपति प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने इस परिषद् की पूर्व आयोजित बैठक तथा अन्य प्रगति रिपोर्ट के साथ ही राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान एवं उसके दस परिसरों की प्रगति आख्या आदि का विवरण प्रस्तुत किया। कुछ माननीय सदस्यों ने संस्कृत भाषा के विकास एवं उसके व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु अपने सुझाव एवं नई योजनायें केन्द्र सरकार के समक्ष प्रस्तुत कीं।

सम्मान समारोह –

दिनाङ्क 4-6 मार्च, 2013 को साहित्य मण्डल श्रीनाथद्वारा की ओर से पाटोत्सव ब्रजभाषा समारोह का आयोजन किया गया। जिसमें अनेक आयोजनों के साथ-साथ 6 मार्च, 2013 को

विविध समाचार

निम्नलिखित विद्वानों को उनकी उत्कृष्ट सेवाओं के लिए **सम्पादक शिरोमणि** मानद उपाधि से सम्मानित किया गया –

1. डॉ. आदित्य मिश्र (सम्पादक, विवरणपत्रिका, हैदराबाद)
2. प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल, संचालक, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर। (सम्पादक-विश्वज्योति)
3. श्री कृष्णमुरारी इष्ठाना (देवपुत्र पत्रिका, इन्दौर)
4. श्री व्रजगोपाल राय जी चंचल (सुपर आइडिया, लखनऊ)
5. डॉ. गोकुलेश्वर जी द्विवेदी (विश्वस्नेही समाज, इलाहाबाद)
6. श्री देवेन्द्र जी दीक्षित शूल (हिन्दी सुरभि सिकन्दराबाद) –

यह संस्था 1937 से स्थापित है। इसके द्वारा फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को पाटोत्सव व्रजभाषा समारोह तथा 14 सितम्बर को 'हिन्दी लाओ देश बचाओ समारोह' प्रतिवर्ष आयोजित किया जाता है। इसमें विभिन्न संस्थाओं के विद्वानों का अभिनन्दन किया जाता है। इसका आयोजन साहित्य मण्डल, श्रीनाथद्वारा की ओर से किया जाता है।

साहिल के उपन्यास 'बायस्कोप' को राष्ट्रीय पुरस्कार –

(होशियारपुर) भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा अहिन्दी भाषी राज्यों के हिन्दी लेखकों की उत्कृष्ट रचनाओं को पुरस्कृत करने की योजना के अन्तर्गत होशियारपुर वासी प्रसिद्ध लेखक प्रिं. धर्मपाल साहिल (राष्ट्रपति सम्मान प्राप्त) के उपन्यास 'बायस्कोप' को राष्ट्रीय पुरस्कार हेतु चुना गया है।

दर्जन भर हिन्दी-पंजाबी पुस्तकों के रचयिता प्रिं. साहिल की इस उल्लेखनीय उपलब्धि पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए प्रो. प्रेम कुमार नज़र (शिरोमणि उर्दू साहित्यकार) ने कहा कि यह राष्ट्रीय पुरस्कार प्रिं. साहिल के मौलिक चिन्तन व लेखन को प्राप्त हुआ है। इस से होशियारपुर की शान बढ़ी है।

संस्थान-समाचार

अभ्यागत –

मैं श्रीमती पुष्पा भल्ला (प्रपौत्रवधु स्व. श्री धनीराम भल्ला), श्री मनीष भल्ला (प्रपौत्र), श्री गौतम भल्ला (प्रपौत्र), अपनी पुत्री ऋतिका भल्ला (पर-परपौत्री), पुत्र कुशाग्र भल्ला (पर-परपौत्र), दिव्य भल्ला (पर-परपौत्र) इस आश्रम में आज दिनांक 31-3-2013 शाम 6 बजे अपने पूरे परिवार के साथ जालन्धर से आई हूँ। इस ऐतिहासिक स्थान पर कदम रखते ही मेरे मानो रोंगटे खड़े हो गए। इतनी खुशी हुई कि मैं लफजों में बयान नहीं कर सकती। गर्व से हम सब का सीना चौड़ा हो गया है।

हमारी प्रतीक्षा कर रहे वर्तमान संचालक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल जी ने संस्थान के परिसर में बनाए गए भव्य नवीन अतिथिभवन को भी हमें दिखाया। आश्रम में यह सब कुछ देखकर मन प्रसन्न हुआ और लगा कि हमारे परमपूज्य स्वर्गीय धनीराम भल्ला जी ने यह आश्रम एक उच्चकोटि के संस्थान को प्रदान किया जिससे इसका नाम न केवल भारतवर्ष में ही नहीं अपितु विदेशों में भी बड़े आदर से लिया जाता है। इन्हीं शुभकामनाओं सहित। – श्रीमती पुष्पा भल्ला

दान–

	रु.
प्रिंसिपल, बी. बी. के. डी. ए. बी. कॉलेज फार विमेन, लारेन्स रोड, अमृतसर	10,000/-
कलियाणजी चतुर्भुज एवं विजय कण्टोल धर्मार्थन्यास, 114, चर्चगेट रेक्लामेशन, मुम्बई	10,000/-
Dr. M. L. Sharma San Francisco (U.S.A.)	$ 200
Dr. Gopal Krishan Sharma, Martin, Tennessee, U.S.A.	$ 201
श्री माँ (डॉ.) उमा शक्ति जी, कैलाश नगर, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)	5100/-
श्री अशोक लाल भाटिया, राजेन्द्र पार्क, नई दिल्ली	5000/-
श्री बी. एम. भल्ला, सैक्टर 27 डी, चण्डीगढ़	5000/-
श्रीमती सरिता वैश, आनन्द निकेतन, नई दिल्ली	5000/-
सुश्री शीला सभ्रवाल, ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली	5000/-
शीला हरि धर्मार्थ न्यास, सैक्टर 14, फरीदाबाद	5000/-
श्री वीरेन्द्र सहगल, कन्नाट पलेस, नई दिल्ली	5000/-
लै. कर्नल वी. बी. मनोचा, एन.डी.एस.ई. II, नई दिल्ली	5000/-
प्रोफेसर प्रेम कुमार चौधरी, कैलाश कालोनी, नई दिल्ली	5000/-
डॉ. कर्ण सिंह, 3, न्याय मार्ग, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली	2100/-

श्री बनारसी दास महाजन,
कटड़ा शेर सिंह, अमृतसर 2100/-
श्रीमती चंचल कुमारी,
सैक्टर 22बी, चण्डीगढ़ 2100/-
श्री देवेन्द्र कुमार पोद्दार,
सैक्टर 37 ए, चण्डीगढ़ 2000/-
डॉ. लीला सैनी,
प्रेमगढ़, होश्यारपुर 2000/-
श्रीमती सन्तोष शर्मा,
140 हवैअन डॉ. मानकांटो,
यू. एस. ए. 2000/-
श्री चन्द्र मोहन अरोड़ा,
सैक्टर 22बी, चण्डीगढ़ 2000/-
श्री जे. के. सामा,
सैक्टर 16-ए, चण्डीगढ़ 2000/-
डॉ. एस. एल. चावला,
ऊधम सिंह नगर, जालन्धर 2000/-
विंग कमाण्डर एस. आर. लक्ष्मी नारायणन,
पोलाची (तमिलनाडू) 2000/-
प्रोफैसर नरिन्द्र कुमार पाठक,
न्यू गुरु तेग बहादुर नगर, जालन्धर 1500/-
श्रीमती सुशील कौशल,
वार्ड नं. 3, दसूहा 1500/-
कुमारी एस. पण्डित,
मनी माजरा, चण्डीगढ़ 1200/-
श्रीमती प्रेम चड्ढा,
बाग अम्बरपेट, हैदराबाद 1100/-
श्री अरविन्द गुप्ता, सिविल लाइन्ज़,
धर्मशाला (हि. प्र.) 1100/-
आर्य समाज, सिविल लाइन्ज़,
धर्मशाला (हि. प्र.) 1100/-
श्री शिव कुमार वर्मा,
पंजाब विश्वविद्यालय पुस्तकालय,
साधु आश्रम, होश्यारपुर 1100/-
श्री प्रेम कृष्ण बहल,
ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली 1100/-
प्रिंसिपल, डी. ए. वी. कॉलेज
चण्डीगढ़ 1100/-
श्री सुरेश चन्द्र भसीन,
पवनपुरी, वीकानेर 1100/-
श्री प्यारे लाल गुप्ता,
गोरेगांव वेस्ट, मुम्बई 1100/-
श्री पी. सी. पी. राधाकृष्णन,
120 रुए लाल बहादुर, पाण्डीचेरी 1000/-
डॉ. रेणु, रीडर एवं चैयरमैन,
पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला 1000/-
श्री ओमप्रकाश आनन्द,
रियाजपुरा, जालन्धर शहर 1000/-
श्री सतीन्द्र आनन्द,
पलटन बाजार, गुवाहटी 1000/-
लाला नानक चन्द केसर राम नारंग
धर्मार्थन्यास, 1 नवल किशोर रोड,
लखनऊ 1000/-
श्री धर्मपाल शर्मा, चीलगाड़ी,
धर्मशाला (हि. प्र.) 1000/-
श्री देवनारायण भारद्वाज,
रामघाट मार्ग, अलीगढ़ 1000/-

श्री जगदीश चन्द्र सडाना,
माता रानी रोड, लुधियाना 550/-
श्री सुशील कुमार मित्तल, मिल्लर गंज,
लुधियाना 501/-
प्रिंसिपल,
डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, गुड़गांव 500/-
श्री भीष्म कुमार गुप्ता,
माता निहाल देवी ट्रस्ट, ऊधमपुर 500/-
श्री सी. के. आनन्द,
एन 12 वेस्ट, नई दिल्ली 500/-
श्री धर्मपाल कतना,
प्रह्लाद नगर, होश्यारपुर 250/-

वार्षिक सदस्य से शुल्क प्राप्ति – रु.

डॉ. राम प्रताप,
त्रिकुटा नगर, जम्मू तवी 500

हवन-यज्ञ–

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ।

मार्च-अप्रैल, 2013 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परम पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का संकीर्तन भी नियमित रूप से किया गया।

स्वर्गीय श्री धनीराम भल्ला जयन्ती–

संस्थान के परम उपकारी एवं हितैषी स्व. श्री धनीराम जी भल्ला की जयन्ती दिनांक 5-3-2013 को संस्थान के सत्संग मन्दिर में हवन-यज्ञ के साथ मनाई गई। उसके अनन्तर प्रसाद वितरण किया गया।

जन्म दिन –

श्रीमती लतारानी बंसल धर्मपत्नी श्री कर्मवीर जी बंसल के 76वें जन्म दिवस के उपलक्ष्य में दिनांक 12-3-2013 को संस्थान के सत्संग मन्दिर में हवन-यज्ञ का आयोजन किया गया। इस अवसर पर सौभाग्यशालिनी लतारानी जी बंसल की निरोगता तथा दीर्घायु के लिए शुभ कामनाएँ प्रदान की गईं। हवन-यज्ञ के उपरान्त श्री बंसल जी की ओर से प्रदत्त प्रसाद का भी वितरण किया गया।

शोक-समाचार –

वी. वी. आर. आई. प्रैस के कर्मिष्ठ श्री मुनीलाल का दिनांक 23-3-2013 को होशियारपुर में निधन हो गया। इस शोक के अवसर पर संस्थान तथा पंजाब विश्वविद्यालय पटल के सभी कर्मिष्ठों की ओर से दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित की गई तथा प्रभु से प्रार्थना की गई कि वह उनके परिवार और संबंधियों को इस दु:ख को सहन करने की शक्ति प्रदान करे तथा दिवंगत आत्मा को शान्ति व सद्गति प्रदान करें।

॥ ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ॥

पुण्य-पृष्ठ खण्ड

वेदादि शास्त्रों के प्रेरणाप्रद वचनों सहित, स्मारक पृष्ठ

विश्वज्योति
श्रीमद्भगवद्गीता विशेषांक
के
इस भाग में

वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता, मनुस्मृति, महाभारत, पुराण आदि धार्मिक ग्रन्थों से स्वाध्याय, मनन तथा जीवन में आचरण करने योग्य एवं प्रेरणादायक सद्वचनों को संगृहीत किया गया है।

इन शिक्षाप्रद वचनों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस प्रकार के वचनों को निरन्तर पढ़ने तथा उनका मनन करने और तदनुरूप जीवन को ढालने से पाठक संसार में रहते हुए भी अपार शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

प्रत्येक पृष्ठ पर

हिन्दी अर्थ सहित शास्त्र-वचन हैं

तथा

पृष्ठ-प्रयोजक दानी सज्जनों की ओर से शुभकामनाएँ दी गई हैं।

दानी-सज्जनों की नाम-सूची

	पृष्ठ
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर	4
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर	5
सुश्री नीता सूद, अरलिंगटन (यू. एस. ए.)	6
श्रीमती सुमित्रा देवी बस्सी, लुधियाना	7
सर्वश्री कलियाणजी चतुर्भुज एवं विजय कण्टोल धर्मार्थन्यास, मुम्बई	8
सर्वश्री बैजनाथ भण्डारी सार्वजनिक धर्मार्थन्यास, नई दिल्ली	9
प्रो. सुखदेव, भावनगर (गुजरात)	10
श्री हर्षनाथ, केनेडा	11
श्रीमती सरोजबाला वर्मा, कपूरथला	12
विंग कमाण्डर वी. सी. नाग (सेवानिवृत्त) धर्मशाला	13
श्री ए. के. धवन, नई दिल्ली	14
Mr. Anil Vasudeva, London	15
श्रीमती ऊषा, नई दिल्ली	16
श्रीगौरव, जीरकपुर (मोहाली)	17
डॉ. (श्रीमती) लज्जा देवी मोहन,पानीपत	18,19
श्री वी. एम. भल्ला, चण्डीगढ़	20
सुश्री शीला सभ्रवाल, नई दिल्ली	21
श्रीमती सरिता वैश, नई दिल्ली	22
श्रीमती गुरशान्ति नाथ, नई दिल्ली	23
कौशल्यावती धर्मार्थन्यास, नई दिल्ली	24

	पृष्ठ
श्रीमती चंचल कुमारी, चण्डीगढ़	25
श्रीचन्द्रमोहन अरोड़ा, चण्डीगढ़	26
श्रीमती राजरानी, लुधियाना	27
डॉ. अशोक सूद, होशियारपुर	28
श्री शंकर लाल अग्रवाल, पटियाला	29
श्री योगेन्द्रपाल कौड़ा, मोहाली	30
श्री देवेन्द्रनाथ चान्द तथा श्री आर. एम. चान्द, गाजियाबाद	31
श्री नरेशचन्द्र सूद, होशियारपुर	32
श्रीमती निर्मला देवी शर्मा, शाडीथाच (हि. प्र.)	33
श्री देवेन्द्रलाल कुमार, मुरादाबाद	34
दयालसिंह पब्लिक लाईब्रेरी ट्रस्ट सोसाइटी, नई दिल्ली	35
सर्वश्री लाला नानकचन्द केसरराम नारंग धर्मार्थ न्यास, लखनऊ	36
श्री धर्मपाल शर्मा, धर्मशाला (हि. प्र.)	37
श्री वीरेन्द्र कुमार सूद, होशियारपुर	38
बक्शी बी. एल. छिब्बर, नई दिल्ली	39
एडवोकेट बलदेव सहाय ओहरी, होशियारपुर	40
श्री रामभज मदान, नई दिल्ली	41
श्री रामभजदत्त, पानीपत	42
श्रीमती सन्तोष हासिजा, नई दिल्ली	43
श्री एम. पी. बीर, दिल्ली	44

	पृष्ठ
डॉ. भागेन्द्र सिंह ठाकुर, जोगेन्द्र नगर (हि. प्र.)	45
डी. ए. वी. पब्लिक स्कूल, गुड़गांव (हरियाणा)	46
श्री ओम्प्रकाश बजाज, जबलपुर (म. प्र.)	47
सर्वश्री दुर्गादेवी मेमोरियल न्यास, कोलकाता	48
श्री धर्मपाल कतना, होशियारपुर	49
Dr. Gopal Krishan Sharma, Martin, Tennessee (U.S.A.)	50
प्रिंसिपल, बी. बी. के. डी. ए. बी. कॉलेज फॉर विमेन, अमृतसर	51
श्री माँ (डॉ.) उमा शक्ति जी, कुरुक्षेत्र	52
लै. कर्नल वी. वी. मनोचा, नई दिल्ली	53
श्री अशोक लाल भाटिया, नई दिल्ली	54
श्री जे. के. सामा, चण्डीगढ़	55
प्रोफेसर नरेन्द्र कुमार पाठक, जालन्धर	56, 57, 58
श्री ओमप्रकाश आनन्द, जालन्धर शहर	59
पण्डिता प्रतिभा भारद्वाज 'वासिष्ठ' अलीगढ़	60
श्रीमती सन्तोष शर्मा, यू. एस. ए.	61, 62
श्री देवेन्द्र कुमार पोद्दार, चण्डीगढ़	63
श्री सी. के. आनन्द, नई दिल्ली	64
प्राचार्य, के. आर. के. डी. ए. वी. सीनियर सैकण्डरी स्कूल, गढ़दीवाला, होशियारपुर	65

	पृष्ठ
श्रीमती प्रोमिला इन्द्रजीत तलवाड़, (रिटायर्ड प्रिंसिपलज़) जालन्धर छावनी	66
सुश्री प्रो. शारदा सूद, होशियारपुर	67
कुमारी एस. पंडित, चण्डीगढ़	68, 69
श्रीमती प्रेम चड्डा, हैदराबाद	70
डॉ. एम. एल. शर्मा, यू. एस. ए.	71
डॉ. रेणु, पटियाला	72
श्री अरविन्द गुप्ता, धर्मशाला (हि. प्र.)	73
अध्यक्ष, आर्य समाज, धर्मशाला	74
श्री शिव कुमार वर्मा, साधुआश्रम, होश्यारपुर	75
श्रीमती कमलेश शर्मा, कोटा जंक्शन (राज.)	76, 77
श्री प्रभुदयाल बुधराम जिन्दल धर्मार्थन्यास, होश्यारपुर	78
प्रिंसिपल, डी. ए. वी. कॉलेज, चण्डीगढ़	79
सर्वश्री आर. एन. ओम् प्रकाश आनन्द, गुवाहटी	80
श्री गंगा बिशन मरवाहा, होश्यारपुर	81
श्री ब्रजेश शर्मा, होश्यारपुर	82
श्री सुशील मित्तल, लुधियाना	83
श्री भीष्म कुमार गुप्ता, ऊधमपुर	84
शीला हरिधर्मार्थ न्यास, फरीदाबाद	85
माननीय डॉ. कर्ण सिंह, नई दिल्ली	86
श्री वीरेन्द्र सहगल, नई दिल्ली	87
डॉ. एस. एल. चावला, जालन्धर शहर	88
Wg. Cdr. Lakshminarayanan (Rtd.) Pollachi	89
डॉ. लीला सैनी, होश्यारपुर	90

रविः हि रश्मिजालेन दिवा हन्ति बहिस्तमः।
सन्तः सूक्तिमरीच्योघैश्चान्तर्ध्वान्तं हि सर्वदा॥

बृहन्नारदीयपुराण, 4.37

सूर्य अपनी किरणों के समूह से दिन के समय बाहर जो अन्धेरा होता है उसको ही नष्ट करता है। परन्तु सज्जन व्यक्ति अपनी मधुर वाणीरूपी किरणों के समूह से व्यक्ति के अन्तःकरण में विद्यमान अन्धकाररूपी अज्ञान को सदा के लिए नष्ट करते हैं अर्थात् मधुर तथा ज्ञानकारी वाणी सर्वदा दूसरों को सत्शिक्षा प्रदान करती है।

महान् शिक्षाविद्, उदार एवं विनम्र तथा सरल स्वभाव, मृदुभाषी एवं लोकोपकारी,
डी. ए. वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी (दिल्ली) के प्रधान
तथा वी. वी. आर. आई के प्रधान

स्व. पद्मभूषण (प्रिं.) ज्ञानप्रकाश जी चोपड़ा

(निधन 21-9-2011)

की पावन स्मृति में समर्पित

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होशियारपुर

की ओर से

यदा निवृत्तः सर्वस्मात्, कामो योऽस्य हृदि स्थितः।
तदा भवति सत्त्वस्थः, ततो ब्रह्म समश्नुते॥

महा. शान्ति, 66. 38

इस संसार में रहते हुए भी जब व्यक्ति अपने हृदय में विद्यमान सभी प्रकार की इच्छाओं से रहित हो जाता है तब वह अपने ही स्वरूप अर्थात् अपनी आत्मा में स्थिर होकर ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है अर्थात् परब्रह्म के पद को प्राप्त करने के सदृश आनन्द का अनुभव करता है।

महान् व्यक्तित्व के धनी, नगर के सम्माननीय नागरिक, अनेक संस्थाओं के प्रतिष्ठित सदस्य, आँखों के प्रसिद्ध चिकित्सक (सर्जन), वी. वी. आर. आई. के उपप्रधान,

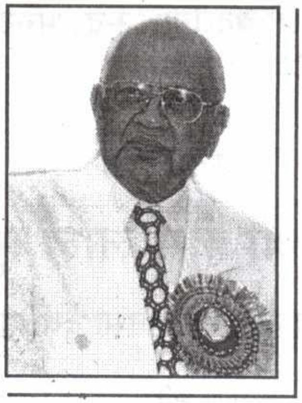

स्व. डॉ. ओ. पी. चौधरी

(निधन 22-10-2011)
की पावन-स्मृति में समर्पित

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होशियारपुर
की ओर से

नहीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु विद्यते।
यथा मैत्री च भूतेषु दानं च मधुरा च वाक् ॥

महाभा. आदिप. 82.12

संसार में दूसरों को वश में करने के लिए प्रत्येक के प्रति मित्रता का भाव रखना, सत्पात्र को दान देना, मधुर बोलना जैसा दूसरा उपाय नहीं है अर्थात् ये बातें दूसरों को एकदम वश में कर लेती हैं।

अपनी पूज्या दादी

स्व. श्रीमती देवकीदेवी सूद

[धर्मपत्नी स्व. श्री बदरीनाथ सूद, भुंगरनी, पंजाब]

तथा

पूज्य पिता

स्व. श्री हीरा लाल सूद

[सुपुत्र स्व. श्री गंगाराम सूद और स्व. मनसा देवी सूद, अम्बोटा (हि. प्र.)]

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजिका –

नीता सूद

अरलिंगटन, वरजिनीया (यू. एस. ए.)

ममता परमं दुःखं निर्ममत्वं परं सुखम्।
सन्तोषाद् अपरं नास्ति सुख-स्थानं शचीपते॥

देवीभागवतम्, 5. 4. 45.

इस संसार में ममता अर्थात् किसी वस्तु के प्रति मोह ही सभी दुःखों का कारण है। ममत्वहीन व्यक्ति संसार में रहता हुआ भी सुखी है। सन्तोष से बढ़कर दूसरी कोई वस्तु सुख प्रदान करने वाली नहीं है। अतः व्यक्ति को सर्वदा सन्तुष्ट रहना चाहिए अर्थात् सन्तोष ही सुख का मूल है।

अपने पूज्य पति

स्व. श्री केशवचन्द्र जी ठेकेदार

(निधन : 18-10-94)

जो संस्थान के परम हितैषी तथा परम दानी पुरुषों में से थे, जिनके निधन से समाज एक महान् व्यक्ति के जाने से हुई कमी को कभी पूरा नहीं कर सकता

की

पुण्यस्मृति

में

उनके विनीत बच्चों तथा बन्धु-बान्धवों और हितचिन्तकों की ओर से

प्रयोजिका

श्रीमती सुमित्रा देवी बस्सी (धर्मपत्नी)

534-एल, माडल टाऊन, लुधियाना।

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो
द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति
विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः॥

ऋ. 10, 37, 2

मेरा सत्य बोलना मेरी चारों ओर से रक्षा करे। उस सत्य में ही द्युलोक और पृथिवी, दिन और रात फैले हुए हैं। अन्य सारे प्राणी, जो गतिशील हैं, उस सत्य में ही निवास करते हैं। सत्य के आधार पर ही सदा नदियां बहती हैं और निरन्तर सूर्य उदय होता है।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

सर्वश्री कलियाणजी चतुर्भुज एवं विजय कण्टोल धर्मार्थ न्यास

ब्लॉक नं. 13, चौथी मंजिल, स्नेह सदन,
114, चर्च गेट रिक्लेमेशन, मुम्बई- 400 020

यतो यतो निवर्तते, ततस् ततः विमुच्यते।
निवर्तनाद् हि सर्वतः, न वेत्ति दुःखमण्वपि॥

(नीति–36, 14)

संसार में रहते हुए मनुष्य का मन जहां–जहां से निवृत्त होता जाता है, वहाँ–वहाँ से मनुष्य दुःखों से छूट जाता है। अन्त में सभी ओर से मन के निवृत्त हो जाने पर वह तनिक भी दुःख का अनुभव नहीं करता। तात्पर्य है कि मनुष्य का मन ही उसको विषय की ओर ले जाता है, जिससे वह विषयासक्त हो कर दुःखी रहने लगता है अर्थात् विषय–निवृत्ति होने से प्राणी सुखी हो जाता है।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथः

सर्वश्री बैजनाथ भण्डारी सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास

इ–22, डिफैन्स कालोनी,
नई दिल्ली–110 024

इह वा तारयेद् दुर्गाद् उत वा प्रेत्य तारयेत् ।
सर्वथा तारयेत् पुत्रः पुत्र इत्युच्यते बुधैः ॥

महा. आदिप. 147.5

जब कभी माता-पिता के सामने कठिनाईयाँ आती हैं तो पुत्र उनसे उनको पार लगाता है। मृत्यु के बाद वह परलोक से पार लगाता है, क्योंकि पुत्र सभी परिस्थितियों में पार लगाने वाला होता है, इसीलिए पण्डित उसको पुत्र कहते हैं।

❋

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री हरिचन्द जी लाला

अपनी पूज्या माता

स्व. श्रीमती मायावन्ती जी

तथा

पूज्य

स्व. स्वामी कृष्णानन्दा जी

की

पुण्यस्मृति

में

प्रो. सुखदेव व परिवार

120, ISCON Mega City, भावनगर –364 001 (गुजरात)

की ओर से

माता पित्रोर्गुरूणां च पूजा बहु मता मम।
इह युक्तो नरो लोकान् यशश्च महदश्नुते॥

महा. शा. प. 103.3

भीष्म पितामह कह रहे हैं कि इस संसार में माता, पिता और गुरु का सत्कार करना मेरे विचार से सबसे श्रेष्ठ कर्म है। जो व्यक्ति अपने जीवन में इनकी पूजा करता है वह व्यक्ति सर्वत्र विजय प्राप्त करता है तथा यशस्वी होता है अर्थात् यश प्राप्त करता है।

स्व. रा. ब. मूलराज

[भूतपूर्व प्रधान (1939-42) वि. वै. शोध संस्थान सभा, होश्यारपुर]

तथा

उनके सुपुत्र

स्व. डॉ. केदारनाथ

(संस्थान के आद्य सचिव)

और

स्व. पारवती देवी (पत्नी)

और

स्व. अरिदमननाथ

की पुण्यस्मृति में

प्रयोजक :

श्री हर्ष नाथ

सड़बरी, केनेडा

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

श्रीमद्भ. गीता.17.20

दान देना मेरा कर्तव्य है इस भाव से जो दान दिया जाता है, तथा जिस देश में और जिस समय जिस वस्तु का अभाव हो उस देश तथा उस समय जो वस्तु दान दी जाय तथा जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता है उसी को वस्तु दी जाय तथा जिसको दान दिया जाता है उससे किसी प्रकार के उपकार की कामना न की जाय। इस प्रकार जो दान दिया जाता है वह सात्त्विक दान कहलाता है।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथः

श्रीमती सरोज बाला वर्मा

(सेवानिवृत्त प्रिंसिपल)

अमर आवास 12, प्रोफेसर कालोनी, कपूरथला।

नास्ति वेदात् परं शास्त्रं नास्ति मातुः परो गुरुः।
नास्ति दानात् परं मित्रम् इह लोके परत्र च॥

अत्रिस्मृति, 2.148

लोक में वेद से बड़ा कोई शास्त्र नहीं है, माता से बड़ा कोई गुरु नहीं और दान से बढकर कोई हित करने वाला मित्र नहीं है। क्योंकि दान देने से दाता का इस लोक तथा परलोक दोनों में कल्याण होता है।

अपने पूज्य पिता जी

स्व. श्री पुरुषोत्तम नाग

अपनी पूज्या माता जी

स्व. श्रीमती क्रोधू नाग

तथा

धर्मपत्नी

स्व. श्रीमती शकुन्तला नाग

की

पुण्यस्मृति

में

विनीत : नाग परिवार

प्रयोजक :

विंग कमाण्डर बी. सी. नाग [सेवानिवृत्त]

एम. 67, हाउसिंग बोर्ड कालोनी, धर्मशाला- 176 215

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥

श्रीमद्भ. गीता 4. 23

सांसारिक पदार्थों से जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो गई है, जो अपने देहाभिमान तथा ममता को एक दम छोड़ चुका है और जिसका चित्त हमेशा परमात्मा के ज्ञान में स्थित रहता है। इस प्रकार केवल यज्ञ-सम्पादन के लिए कर्म करने वाले मनुष्य के सभी कर्म पूर्णरूप से विलीन हो जाते हैं।

❊

विश्वेश्वरानन्द संस्थान के पुराने सदस्य तथा परम हितैषी
अपने पूज्य पिता

स्व. श्री भेरीराम जी धवन

तथा
अपनी पूज्या माता

स्व. श्रीमती चानण देवी जी धवन

की
पावनस्मृति
में

श्री ए. के. धवन

55 ए जोरबाग, नई दिल्ली
तथा

विनीत बच्चों एवं हितचिन्तकों

की ओर से

यथा वृक्षस्य सुपुष्पितस्य दूराद् गन्धो वाति।
एवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद् गन्धो वाति॥

नारा. उप. 2,11

जिस प्रकार अच्छो प्रकार फुले हुए वृक्ष की सुगन्ध दूर तक फैल जाती है, उसी प्रकार (व्यक्ति के द्वारा किए गए) अच्छे कर्मों की सुगन्ध (चर्चा) दूर-दूर तक पहुँच जाती है।

With best compliments from :

Mr. Anil Vashudeva

8, Prince's Avenue,

Kingsbury,

London (U. K.)

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्।
गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते॥

मनुस्मृति, 2, 233

जो व्यक्ति माता-पिता तथा गुरु की सेवा करके उन्हें प्रसन्न करते हैं या अपने आचरण से उन्हें सर्वदा सन्तुष्ट रखते हैं, वे मानो माता की सेवा से भूलोक को पितृभक्ति से अन्तरिक्ष लोक को आचार्य की सेवा से हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेते हैं। तात्पर्य है कि मातृ-पितृ तथा गुरु सेवा तीनों लोकों की प्राप्ति का कारण है।

❁

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री प्रकाशचन्द जी

जो संस्थान के हितैषी थे,

(जिनका 64 वर्ष की आयु में 12-8-98 को देहावसान हुआ)

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजिका :

श्रीमती ऊषा (पुत्री)

33 हिमगिरि अपार्टमेण्टस, विकासपुरी,

नई दिल्ली-110 018

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

श्रीमद्भ. गीता. 2. 56

जिस व्यक्ति के मन में दु:खों के आने पर किसी प्रकार की घबराहट नहीं होती, तथा सुखों के आ जाने से जो उनकी इच्छा नहीं करता तथा जिसके हृदय से राग, भय तथा क्रोध समाप्त हो गये हों ऐसा व्यक्ति ही स्थिरबुद्धि वाला कहलाता है अर्थात् उसकी बुद्धि कभी भी किसी प्रकार अपने मार्ग से इधर-उधर नहीं होती।

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री अनिल कुमार जी

(आयकर आयुक्त)

(जन्म: 1948- मृत्यु : 2003)

की पावन स्मृति में

उनके सुपुत्र

सर्वश्री गौरव, मोहित

तथा उनकी पुत्रवधू

वन्दना, पौत्र इनोदय एवं पौत्री जान्या

फ्लैट नं. 2, टॉवर 21, रायल एस्टेट, जीरकपुर (मोहाली)- 140 603

की ओर से

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति, शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिः वा, स वै पण्डित उच्यते॥

विदुरनीति 1. 24

जिस व्यक्ति के कार्य में, सर्दी, गर्मी, भय, प्रेम, सम्पत्ति तथा विपत्ति किसी भी प्रकार से विघ्न पैदा नहीं कर सकते, वही पण्डित कहलाता है अर्थात् धीर व्यक्ति किसी भी प्रकार से विघ्नों से विचलित न होकर अपना कार्य पूर्ण करता है।

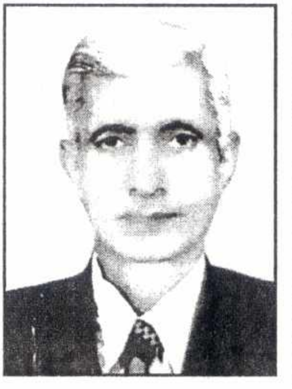

डॉ. महता वसिष्ठदेवमोहन

[जुलाई 1917 – 12 सितम्बर 2003]

की

पावन स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजकवर्ग :

डॉ. लज्जा देवी मोहन (पत्नी) एवं परिवार

463-एल, माडल टाऊन, पानीपत

ज्ञानान्वितेषु युक्तेषु शास्त्रज्ञेषु कृतात्मसु।
न तेषु सज्जते स्नेहः पद्मपत्रेष्विवोदकम्॥

महा. आ. प. 2.32

जो पूर्ण ज्ञानी हैं शास्त्रों के ज्ञाता और सभ्य हैं वे संसार में रहते हुए भी संसार से ऐसे ही निर्लिप्त रहते हैं, जैसे कमल का पत्ता पानी में रहता हुआ भी उससे निर्लिप्त रहता है, उस पर पानी का कोई असर नहीं होता।

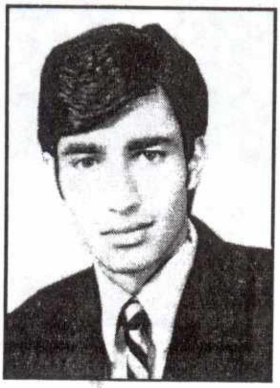

श्री समीर मोहन

[19 दिसम्बर 1948 –
13 मार्च, 2010]

श्रीमती प्रतिष्ठा दत्त

[16 मई 1947 –
30 अक्तूबर, 2008]

की

स्मृति

में

प्रयोजक वर्ग :

डॉ. लज्जा देवी मोहन (माता) एवं परिवार

463-एल, माडल टाऊन, पानीपत

धर्मो बन्धुश्च मित्रञ्च धर्मोऽयं गुरुरङ्गिनाम्।
तस्माद् धर्मे मतिं धत्स्व स्वर्मोक्षसुखदायिनीम्॥

आदिपुराण, 10.109

इस लोक में प्राणियों के लिए धर्म ही भाई, सखा और सच्चा गुरु है, इसलिए स्वर्ग, मोक्ष और सांसारिक सुख देने वाले धर्म के प्रति ही व्यक्ति को अपनी बुद्धि लगानी चाहिए। तात्पर्य है कि धर्म का आचरण ही व्यक्ति को सदा करना चाहिए।

पूज्य पिता

स्व. श्री देवीदयाल जी भल्ला

तथा

पूज्या माता

स्व. श्रीमती रामप्यारी जी भल्ला

की

पुण्यस्मृति

में

श्री वी. एम. भल्ला (पुत्र) तथा

श्रीमती राज कुमारी भल्ला (पुत्रवधू)

चण्डीगढ़

की ओर से

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येषु व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः॥

मुण्ड. उप. 2.7

जो सब कुछ जानता है जिसकी सत्ता सर्वत्र विद्यमान है जिसकी महिमा इस पृथिवी पर सभी जगह सभी प्राणियों में तथा कण-कण में देखी जा सकती है। वह परमात्मा ज्ञान से प्रकाशमान् हृदयाकाश रूपी ब्रह्मपुर में विद्यमान है। योगीजन वहीं उसका साक्षात्कार करते हैं।

❁

अपने पूज्य दादा

स्व. रायबहादुर मूलराज जी

की

पुण्य स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजिका :

सुश्री शीला सभ्रवाल

बी-5, पम्पोश इन्कलेव, ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली-48

अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥

कूर्मपुराण, 26.2

सत्पात्र को श्रद्धापूर्वक दिया गया धन ही दान कहलाता है। इस प्रकार दिया गया दान इस लोक में भोग तथा परलोक में मोक्ष देने वाला होता है अर्थात् श्रद्धापूर्वक अच्छे स्थान या अच्छे व्यक्ति को दिया गया दान दोनों लोकों में शुभ फल देने वाला होता है।

❋

मानवता के गुणों से परिपूर्ण सार्वजनिक सेवा-कार्यों और धार्मिक अनुष्ठानों में बड़ी तत्परता दिखाने वाली दिव्य आत्मा, जिनके निधन से समाज को एक महान् व्यक्ति से हुई कमी कभी पूरी न हो सकेगी।

स्व. विंग कमाण्डर विनय कुमार वैश

(निधन 12 अप्रैल, 1999)

[जो महान् आत्मा अभी भी हमारा पथ-प्रदर्शन कर रही है]

की

पावन स्मृति

में

प्रयोजिका :

श्रीमती सरिता वैश (धर्मपत्नी), श्रीमती गुञ्जन गुप्ता (पुत्री)

श्रीमती नूपुर फौजदार (पुत्री)

डी-21, आनन्द निकेतन, नई दिल्ली-110 021

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्मज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येद् अकर्मणः॥

श्रीमद्भ० गीता 3, 8

व्यक्ति को शास्त्र के अनुसार अपने कर्म को करते रहना चाहिए, कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना उत्तम है, अर्थात् निठल्ला बैठना जीवन को नष्ट करना है। बिना कर्म किए तो यह शरीर भी आगे नहीं बढ़ सकता अर्थात् मनुष्य को कर्मयोग पाकर वेदविहित कर्म निश्चित रूप में करते रहना चाहिए।

❋

अपने पूज्य पति

स्व. एयर मार्शल अजीत नाथ जी

(जिनकी 97वीं जन्मतिथि 25. 4. 2013 को मनाई गई)

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजिका :

श्रीमती गुरशान्ति नाथ

राजदूत मार्ग, नई दिल्ली

धान्यं श्रमेणार्जितवित्तसंचयम्,
विप्रे सुशीले च प्रयच्छते यः।
वसुन्धरा तस्य भवेत् सुतुष्टा
धारां वसूनां प्रति मुञ्चतीव॥
महा. वनप., 41,200

जो परिश्रम से प्राप्त किए हुए तथा संचित किए हुए धन-धान्य को दान करता है, उसके ऊपर वसुन्धरा (पृथ्वी) बहुत प्रसन्न होकर धन की नदी-सी बहा देती है अर्थात् परिश्रम से एकत्रित किए हुए धन को दान करने वाले व्यक्ति पर लक्ष्मी प्रसन्न होकर उसको सर्वदा धन प्राप्त कराती रहती है।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

कौशल्यावती धर्मार्थ न्यास

68, आर. पी. एस. फ्लैटस, शेख सराय,
फेस-1, नई दिल्ली-17

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

मनुस्मृति, 12. 12

जो व्यक्ति नित्यप्रति वृद्ध अर्थात् अपने पूज्य व्यक्तियों को प्रणाम करता है, उनकी चरणवन्दना करता है, उसके आयु, विद्या, यश और बल बढते हैं अर्थात् पूज्य जनों का आदर करना सर्वप्रकारेण उन्नतिदायक होता है।

अपने पूज्य पति

स्व. डा. हरिवंश शर्मा जी

के जन्मदिन पर

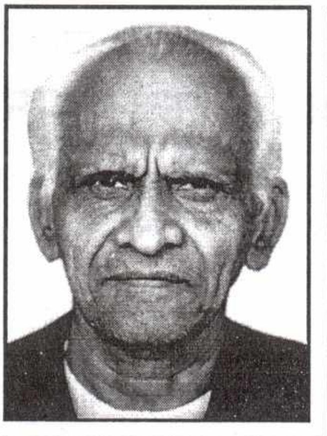

सादर समर्पित

प्रयोजिका :

श्रीमती चञ्चल कुमारी

डॉ. हरिवंश चञ्चल शर्मा धर्मार्थन्यास

1927, सैक्टर 22-बी, चण्डीगढ़

अनाश्रिता दानपुण्यं, वेदपुण्यमनाश्रिताः।
रागद्वेषविनिर्मुक्ताः, विचरन्तीह मोक्षिणः॥

विदुरनीति, 4. 53

संसार से मोक्ष की कामना करने वाले महान् पुरुष दान तथा वेद के अध्ययन से मिलने वाले पुण्य को न चाहते हुए तथा राग और द्वेष से निर्लिप्त रहते हुए जीवन-यापन करते हैं अर्थात् संसार से निर्लिप्त रहते हैं।

❋

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री सुन्दरश्याम जी

(चण्डीगढ़ निवासी)

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री चन्द्रमोहन अरोड़ा

1365, सैक्टर-22 बी, चण्डीगढ़-160 022

दानेन भूतानि वशीभवन्ति, दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानैः, दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥

महा. अनु. 62,9.

संसार में दान देने से सभी प्राणी अपने बन जाते हैं। दान देने से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। यहाँ तक कि दान देने से पराये भी अपने बन जाते हैं। अतः दान सभी प्रकार के कष्टों को हरने वाला है अर्थात् जीवन में किसी न किसी प्रकार दान करते रहना चाहिए।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथः

श्रीमती राजरानी

सर्वश्री अल्का जनरल स्टोर
मीना बाजार, लुधियाना।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते॥
कठ. उ. 1.3.8

जो विज्ञानी मनस्वी सर्वदा पवित्र होता है। वह मनस्वी उस परम पद को प्राप्त कर लेता है, जहाँ जाकर वह जन्ममरण के बन्धन से रहित होकर पुनः मर्त्यलोक में नहीं आता।

❈

विश्वेश्वरानन्द संस्थान के परम भक्त व सहायक

स्व. डा. पृथ्वीनाथ जी सूद

(जन्म 28-10-1914; निधन 02-02-1976)

एवं

स्व. श्रीमती योजनबाला सूद

(जन्म 25. 10. 1927, निधन 7. 6. 2005)

की

पुण्यस्मृति

में

उनके परिवार

की

ओर से

प्रयोजकवर्ग :

डॉ. अशोक सूद, श्रीमती रजनी, अक्षय, होशियारपुर।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुनः ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

श्रीमद्भ. गीता. 6.32

जो साधक अर्थात् योगी सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखता है, तथा सभी में अपने समान ही सुख-दुःख का अनुभव करता है, वही साधक अर्थात् योगी सर्वोत्तम है, अर्थात् सभी में समभाव तथा आत्मीयता का अनुभव करना ही परमात्मा का साक्षात्कार करना है।

स्व. सेठ श्री चिरञ्जीलाल जी अग्रवाल

[जिनका निधन दिनाँक 9. 8. 95 को 88 वर्ष की आयु में हुआ]

जो महान् दानवीर और धार्मिक व्यक्तित्व रखने वाले थे,

की पावनस्मृति में

प्रयोजक :

श्री शंकर लाल अग्रवाल

सर्वश्री नवयुग वस्त्रालय, अदालत बाजार, पटियाला-147001

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

श्रीमद्भ. गीता–2.57

जिस व्यक्ति की अच्छे या बुरे किसी के प्रति भी आसक्ति नहीं होती तथा जो किसी की न बुराई करता है और न प्रशंसा करता है उसकी बुद्धि स्थिर होती है। उसे स्थिरप्रज्ञ कहते हैं।

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री ज्ञानचन्द जी कौड़ा

(निधन : 28-3-1985)

तथा

पूज्या माता

स्व. श्रीमती प्रकाशवती जी कौड़ा

(निधन : 22-1-1992)

स्व. श्री के. के. सेठ (बहनोई)

(निधन : 30-11-2006)

स्व. श्रीमती कान्ता सेठ (बहिन)

(निधन : 7.1.2008)

स्व. श्री रामरक्ष पाल (भाई)

(निधन : 7-12-2007)

स्व. श्रीमती सविता कौड़ा (भाभी)

की पुण्यस्मृति में

प्रयोजकवर्ग :

सर्वश्री योगेन्द्रपाल कौड़ा, मोहाली, राजपाल कौड़ा, गुड़गांव, हरियाणा (पुत्र),
श्रीमती कमलेश कौड़ा, श्रीमती सुनीता कौड़ा (पुत्रवधूएँ)

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणम् यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति ।।

ऐत. ब्रा. 7.33.5

जो व्यक्ति जीवन में आगे चलता रहता है वह मधु प्राप्त करता है। जीवन में चलता हुआ ही मीठे फलों को प्राप्त कर सकता है। सूर्य की शोभा को देखो जो आगे बढने अर्थात् चलने में कदापि आलस्य नहीं करता इसीलिए सबके द्वारा पूज्य है। इसी प्रकार व्यक्ति को जीवन में पुरुषार्थी बनकर बढते रहना चाहिए।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ:

सर्वश्री देवेन्द्रनाथ चान्द

आर. एम. चान्द

C/o Sh. R. N. Verma

11 C/45, Ashirwad Sector II, Vaishali,

Ghaziabad – 201012

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्याद् आचार्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते॥
मनुस्मृति. 2.228

व्यक्ति माता-पिता तथा आचार्य की सेवा करके उन्हें प्रसन्न करे अर्थात् सदा उनके हित की बात करता हुआ उन्हें प्रसन्न रखे। इन तीनों की सन्तुष्टि के सामने सभी तप भी समाप्त हैं अर्थात् जिसने अपने सेवाभाव से इन तीनों को जीवन में प्रसन्न कर लिया समझो उसने सम्पूर्ण तप का फल प्राप्त कर लिया।

स्वर्गीया श्रीमती श्यामा जी सूद

(14. 7. 1952 – 25. 12. 2011)

की पुण्य स्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग :

सर्वश्री नरेश चन्द्र सूद (पति), शरत सूद एवं मनु सूद (पुत्र)

ए. बी. सी. हैण्डलूम

कोतवाली बाजार, होशियारपुर।

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासा-
मामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च,
ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह॥

ऋग्वेद., 6.28.3

जिस धन को देवताओं की पूजा में लगाया जाता है या जो धन दान रूप से दिया जाता है, वह कभी नष्ट नहीं होता, उसको चोर भी नहीं चुरा सकते और न कोई शत्रु ही उसके कारण दुःखी कर सकता है। दान दिए गए उस धन से दाता इस लोक और परलोक में शोभायमान रहता है।

❈

पूज्य पिता

स्व. पंडित पद्मदेव जी

(भूतपूर्व वनमन्त्री, हिमाचल प्रदेश)

जो इस संस्थान के परम हितैषी व पुराने सदस्य थे, जिनका

दुःखद निधन दिनांक **6. 2. 1983** को हुआ

की

पुण्यस्मृति

में

श्रीमती निर्मलादेवी शर्मा (पुत्री)

गाँव शाडीथाच, डाकघर समरकोट, जिला शिमला (हि. प्र.)

की ओर से

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः॥

श्रीमद्भग. गीता, 6. 5

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने द्वारा ही खुद इस संसार-सागर से अपना उद्धार करे। उसको चाहिए कि वह अपने को अधोगति में न ले जाय। क्योंकि मनुष्य अपने आप ही अपना मित्र तथा अपने आप ही शत्रु है। तात्पर्य है कि संसार में व्यक्ति को अपना उद्धार अपने-आप करना है, अन्य कोई उसका उद्धारक नहीं है।

❁

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री हरवंस लाल कुमार जी

की पुण्यस्मृति में
सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री देवेन्द्र लाल कुमार

अतर दीवान ट्रस्ट, कुमार निवास, कम्पनी बाग,
मुरादाबाद-244001

न केवलं दानपरा जयन्ति,
भूलोकमेकं पुरुषप्रवीराः।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकम्,
सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः॥

मत्स्यपु., 224. 8

दान देने वाले व्यक्ति केवलमात्र सांसारिक प्राणियों को ही अपने वश में नहीं कर लेते अपितु अत्यन्त दुर्जेय इन्द्र के उस लोक को भी प्राप्त कर लेते हैं जिसमें देवता रहा करते हैं अर्थात् दानियों के लिए कोई भी स्थान अप्राप्य नहीं है।

❈

स्व. दीवान आनन्द कुमार जी

(भूतपूर्व उपकुलपति, पञ्जाब विश्वविद्यालय एवं भूतपूर्व सभापति, दयालसिंह पब्लिक लाईब्रेरी ट्रस्ट सोसाइटी)

की

पुण्यस्मृति

में

प्रयोजक :

दीवान गजेन्द्र कुमार (प्रधान)

दयालसिंह पब्लिक लाईब्रेरी ट्रस्ट सोसाइटी

1, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली

की ओर से

मानापमानयोः तुल्यः तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

गी. 14.25

भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि जो संसार में रहते हुए भी मान और अपमान होने पर भी समान रहता है। मित्र तथा शत्रु पक्ष में भी समान भाव रखता है तथा जितने भी कार्य करता है उनमें अपने को कर्ता नहीं समझता अर्थात् कर्ता होने का घमण्ड नहीं करता वह पुरुष गुणातीत है अर्थात् वह इस संसार से ऊपर उठ चुका है।

❁

विश्वेश्वरानन्द संस्थान

के

परम-भक्त

स्व. लाला केसरराम जी नारंग

की

पुण्यस्मृति

में

प्रयोजक :

सर्वश्री लाला नानकचन्द केसरराम नारंग धर्मार्थ न्यास

लखनऊ

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।
वृद्धिमाकांक्षता नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः॥
महा. अनु. 69.7

गौ सम्पूर्ण प्राणियों की माता है, वे सभी को सब प्रकार से सुख देने वाली है। जो व्यक्ति अपने कल्याण की कामना करता है अर्थात् जीवन को सफल बनाना चाहता है उसको हमेशा (रास्ते में चलते हुए) गौओं को अपने दाहिने करके चलना चाहिए अर्थात् उसकी फेरी लेते हुए जाना चाहिए। फेरी से तात्पर्य है उसको अपने दाहिने हाथ की ओर करके आगे बढना चाहिए।

❋

अपनी प्रिय धर्मपत्नी

स्व. श्रीमती कैलाशदेवी जी

(11-1-1931-17-4-1993)

तथा पूज्य पिता

स्व. पं. मेलाराम जी

(सनखतरा वाले)

और पूज्या माता

स्व. श्रीमती लाजवन्ती जी

की पुण्यस्मृति में

प्रयोजक :

श्री धर्मपाल शर्मा

[अवकाशप्राप्त प्रधानाध्यापक]

एम.-50, लाजपत नगर, चीलगाड़ी, धर्मशाला-176 215 (हि. प्र.)

ग्रुप कैप्टन चन्द्रशेखर - श्रीमती कञ्चन बाला,
श्री राजीव भारद्वाज-श्रीमती अम्बिका
श्री हेमन्त भारद्वाज-श्रीमती सुनीति (पुत्र एवं पुत्रवधुएँ),
श्रीमती सरिता सेम, ब्रिगेडियर अजय सेम (पुत्री एवं दामाद)

ज्ञाते ह्यात्मनि नो भूयो ज्ञातव्यमवशिष्यते।
अज्ञाते पुनरेतस्मिन् ज्ञानम् अन्यं निरर्थकम्॥

अध्यात्मसार, 18.2

जीवन में आत्मतत्त्व को जान लेने अर्थात् पहचान लेने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रहता। यदि सम्पूर्ण वस्तुओं को जान लिया जाय और आत्मतत्त्व को नहीं जाना तो जीवन में जो कुछ भी जाना व्यर्थ है, अर्थात् मानव को यह देह इसीलिए प्राप्त है कि वह आत्मतत्त्व को पहचाने, अपने को समझे।

❋

संस्कृतज्ञ और संस्कृति के परमोपासक

स्व. ला. विपिनचन्द्र पाल सूद

(जन्म 23-5-1910, निधन 12-4-1977)

पत्नी

स्व. श्रीमती रत्नदेवी सूद

(निधन : 12-8-1998)

सुपुत्र

स्व. श्री कैलाशचन्द सूद

(निधन : 26-2-1993)

स्व. श्री राजेन्द्रप्रसाद सूद

(निधन : 10-9-2012)

तथा

स्व. श्री सञ्जीव सूद

(श्री कैलाशचन्द सूद के सुपुत्र)

(जिनका दुःखद निधन दि. 20-1-1987 को फिलपाईन में हुआ)

की पुण्यस्मृति में

प्रयोजकवर्ग :

श्रीमती कृष्णा सूद, पवन कुमार सूद, वीरेन्द्र कुमार सूद, मयंक सूद

खानपुरी गेट, होश्यारपुर, दूरभाष (दुकान) 222610, (घर) 221365, 221404

न फलादर्शनाद् धर्मः शङ्कितव्यो न देवताः।
यष्टव्यं च प्रयत्नेन दातव्यं चानसूयता॥

महा. वन. 31.38

धर्ममय कार्य का फल तुरन्त न दिखाई दे तो इसके लिए धर्म तथा देवताओं पर किसी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए। अतः किसी प्रकार की शंका न करते हुए व्यक्ति को अपने जीवन में यत्नपूर्वक यज्ञ और दान करते रहना चाहिए, अर्थात् दान का फल यहाँ नहीं तो परलोक में अवश्य प्राप्त होता है।

स्व. बक्शी हरिचन्द जी छिब्बर

(शमसाबाद वाले)

व

उनकी धर्मपत्नी

स्व. श्रीमती सुन्दरी देवी जी छिब्बर

की पुण्यस्मृति में

उनके विनीत सुपुत्र एवं पुत्रवधू

की ओर से

प्रयोजक :

बक्शी बी. एल. छिब्बर (पुत्र) आई. आर. एस., सेवानिवृत्त सदस्य (जज), आयकर अपीलीय अधिकरण; सम्प्रति एडवोकेट सुप्रीम कोर्ट

C/O CHHIBBER & CHHIBBER (REGD.)
ADVOCATES SOLICITORS & TAX CONSULTANTS

1014 (10th Floor) New Delhi House, 27 Barakhamba Road,
Connaught Place, New Delhi-110 001.
Ph: 23766103, Cell : 98109-99521

E-MAIL : chhibbers@rediffmail.com. WEB : www.chhibberandchhibber.com.

यदा यदा हि पुरुषः, कल्याणे कुरुते मनः।
तदा तदा प्रसिध्यन्ति सर्वार्था नात्र संशयः॥

महाभा. शां. प. 226. 7

जब जब मनुष्य (इस संसार में) अपने कल्याण के विषय में विचार करता है। तब तब ही ठसकी सम्पूर्ण इच्छाएं पूर्ण हो जाती हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथः

एडवोकेट बलदेव सहाय ओहरी

सचिव, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान,
साधुआश्रम, होश्यारपुर

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥
ऋ. 5, 51, 15

हे मनुष्यो! जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा नियम से दिन और रात्रि चलते हैं, उसी प्रकार आप भी न्याय के मार्ग को प्राप्त कीजिए और सज्जनों के साथ समागम करिये।

❁

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री जिवन्दाराम मदान

तथा

अपनी पूज्या माता

स्व. श्रीमती सतवन्ती मदान

की

पावनस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री रामभज मदान

तथा परिवार

126, राजा गार्डन, नई दिल्ली

देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः।
शं नो भवन्त्वाप ओषधीः शिवाः॥

अथर्व., 6. 23. 3.

हे मनुष्यों! परमात्मा द्वारा वेदों में जो तुम्हारे लिए प्रेरणा दे रखी है तुम सभी उसके अनुरूप कार्य करो। जिससे जल तथा ओषधियाँ आदि सभी वस्तुएं तुम्हारे लिए कल्याण करने वाली होवें।

❃

With best compliments from:

Shri Ram Bhaj Datt

Vogue Fabrics, Post Box 23,

G. T. Road, Panipat

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतः नायं हन्ति न हन्यते॥

कठोप. 2

लोक में यदि कोई आत्मा को मारने योग्य समझता है और मरने वाला यदि आत्मा को मरने वाला समझता है तो वे दोनों ही कुछ नहीं जानते। वस्तुतः आत्मा न किसी को मारता है, और न ही किसी के द्वारा मारा जाता है अर्थात् यह आत्मा नित्य है, नश्वर है, अनादि और अनन्त है।

❋

अपने पूज्य पति

स्व. श्री सचिदानन्द हासिजा

[जिनका दुःखद निधन 4-6-2002 को हुआ]

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजिका :

श्रीमती सन्तोष हासिजा, 31/12, ग्राउण्ड फ्लोर,

ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली- 110 008

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥

श्रीमद्‌भ० गीता, 4.19

जिस व्यक्ति के सभी काम कामनाओं के संकल्प से अर्थात् फल की इच्छा से रहित होते हैं तथा ज्ञानरूपी अग्नि में जिसके कार्य-फल जल चुके होते हैं बुद्धिमान्-जन ऐसे ही व्यक्ति को पण्डित कहते हैं।

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री गंगाराम जी बीर

(जिनका निधन 20-10-1977 को हुआ)

तथा

पूज्या माता

स्व. श्रीमती सुशीला देवी जी बीर

(जिनका निधन 14-5-1989 को हुआ)

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री एम. पी. बीर (पुत्र)

18-सी, विजय नगर, दिल्ली-110 009

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुः दानमेकं कलौ युगे॥

मनुस्मृति, 1. 86

सतयुग में तपस्या की, त्रेतायुग में ज्ञान की, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान की महिमा कही गई है अर्थात् कलियुग में केवल दान-धर्म ही प्रधान माना गया है।

❋

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथः

डॉ. भागेन्द्र सिंह ठाकुर

निकट आई. टी. आई.,
जोगेन्द्र नगर, जिला मण्डी (हि. प्र.) – 176 120

नापेक्षा न च दाक्षिण्यं न प्रीतिः न च सङ्गतिः।
तथापि हरते तापं लोकानामुन्नतो घनः॥

भामिनीवि. 37.

पृथ्वी से बहुत दूर आकाश में उड़ने वाले बादल का पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य से क्या लेना देना, क्योंकि उसका उससे न प्रेम है, न उसका सहयोग, न उससे कोई लाभ। फिर भी बादल पृथ्वी पर रहने वाले के ताप को दूर करता है अर्थात् परोपकार करने वाले व्यक्ति कभी कोई ऐसी चीज नहीं देखते कि यह मेरा या कोई और है, उनका गुण ही परोपकार करना होता है।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

डी. ए. वी. पब्लिक स्कूल

सैक्टर 14, गुड़गांव (हरियाणा)

प्रयोजिका :

प्रिं. श्रीमती अनीता मक्कड़

क्षमा धना महाभागा ये च दान्ताः तपस्विनः।
तेषां चैवाक्षया लोकाः सततं साधुकारिणाम्॥

शिक्षामञ्जूषा 554

जो व्यक्ति क्षमावान् होते हैं, जिनका मन वश में रहता है, जो तपस्वी हैं तथा जो निरन्तर (अपने जीवन में) अच्छे कर्म करते हैं। ऐसे ही महापुरुष योगीजन मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

❋

प्रिय पुत्र

स्व. विजय बजाज

[17.2.1955 – 30.12.2011]

की पुण्यस्मृति में

प्रयोजकवर्ग :

ओमप्रकाश बजाज, कृष्णा बजाज

बी–2 गगन विहार, गुप्तेश्वर, जबलपुर – 482001 (म. प्र.)

फोन : (0761) 2426820, 6522333

मोबाईल : 98264–96975, 92298–88897

यथा सर्वेषु वृक्षेषु जलमेकं पयोमुचः।
नानारसान् जनयति धर्मः प्राणिगतस्तथा॥

अर्हद्गीता 6. 5

जिस प्रकार बादलों से वर्षा हुआ एक ही प्रकार का जल सभी वृक्षों में भिन्न-भिन्न प्रकार के रसों को पैदा कर देता है उसी प्रकार धर्म भी विभिन्न प्राणियों में अनेक प्रकार की प्रेरणा प्रदान करता है।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

सर्वश्री दुर्गादेवी मेमोरियल न्यास

9/1, आर. एन. मुखर्जी रोड, कोलकाता

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

गीता; 2.40

जीवन में सेवा परोपकार अथवा जो कुछ भी कार्य निष्काम भाव से किया जाता है उसका फल महान् होता है। जीवन में थोड़ा-सा भी धर्ममय किया गया कार्य अनेक विपत्तियों से पार लगा देता है, अर्थात् निष्काम भाव से किया गया कोई भी धार्मिक काम इहलोक तथा परलोक में सुखदायी होता है।

IN SWEET MEMORY OF

LATE SMT. KAILASH DEVI KATNA

[Who died on 18th March, 1999]

on her **14TH DEATH ANNIVERSARY**

[Which falls on 18 March, 2013]

Inserted by/ Homage Paid by

SH. DHARM PAL KATNA [HUSBAND]

[Retd. Secretary, Red Cross, Hoshiarpur]

And

CHILDREN : ASHOK, NEELAM; SAGAR-PINKI & SURINDER-KIRAN

498/1, PRAHLAD NAGAR, HOSHIARPUR- 146 001

यज्ञ-दान-तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

श्रीमद्भग. गीता, 18.5

व्यक्ति को यज्ञ करना, दान देना तथा तप इत्यादि शुभ कर्म करना कदापि नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि ये सभी चीजें मनुष्य जीवन को पवित्र करने वाली हैं अर्थात् उसके जीवन को सफल बनाने वाली हैं।

With best compliments from :

Dr. Gopal Krishan Sharma

167, Mockingbird Lane (Scenic Hills)
Martin, Tennessee,
U. S. A.- 382 37.

गुणानां वा विशालानां सत्-काराणां च नित्यशः।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥

स्वप्नवासव., 4-10

इस संसार में बहुत से गुणों वाले तथा गुणी व्यक्तियों का सत्कार करने वाले अनेक व्यक्ति देखे जा सकते हैं अर्थात् उनकी इज्जत करने वाले बहुत होते हैं। परन्तु गुणों का मूल्याङ्कन करने वाले व्यक्ति बहुत ही कम मिलते हैं।

❋

With best compliments from :-

BBK DAV COLLEGE FOR WOMEN

A MULTI FACULTY POST GRADUATE COLLEGE
LAWRENCE ROAD, AMRITSAR [PUNJAB] INDIA

An Institution that works with Vision, Passion & Compassion for Quality & Excellence
ACCREDITED: A+ BY NAAC, BANGALORE
College with Potential for Excellence -Status conferred by UGC, New Delhi
Managed by DAV College Managing Committee, New Delhi & Affiliated to Guru Nanak Dev University, Amritsar

A BIG NUMBER OF MERIT POSITIONS IN GNDU EXAMINATIONS–51 FIRST, 43 SECOND, 33 THIRD, 245 FIRST TEN POSITIONS & 317 TOTAL MERITS (2011-12).

PROGRAMMES AVAILABLE (2013-14)

UNDER GRADUATE COURSES :-

* BA
* B Sc Medical
* B Sc Biotechnology
* B Sc IT
* B Sc Economics
* B Com Professional
* BCA
* BA (School Hons in English)
* B Sc Non-Medical
* B Sc with Bioinformatics
* B Sc Computer Sc
* B Com Regular
* BBA
* Diploma in Cosmetology
* BA Journalism & Mass Communication

VOCATIONAL SUBJECTS AT BA LEVEL :

* Gemology & Jewellery Design
* Mass Communication & Video Production
* Still Photography & Audio Production
* Tourism & Travel Management
* Fashion Designing & Garment Construction
* Commercial Art & Computer Applications

POST GRADUATE/PG DIPLOMA & 4 YEAR COURSES :-

* M Sc Fashion Designing & Merchandising
* M Sc Computer Science
* MA Journalism & Mass Communication
* MA Media Studies & Production
* MA Commercial Art
* M Com
* MA Fine Arts
* MA English
* MA Punjabi
* Master in Tourism & Travel Mgmt.
* Master in Multimedia
* Master in Interior Design
* M.Sc. in Internet Studies
* PGDCA
* PG Dip. in Garment Construction & Fashion Designing.
* PG Diploma in Financial Services (Banking & Insurance)
* Four Year Degree Course in Bachelor of Design (with specialization in Fashion, Textile & Interior Designing)
* Four Year Degree Courses in Bachelor of Multimedia
* Four Year Degree Course in Bachelor of Fine Arts (BFA)

ADD-ON-COURSES (CERTIFICATE / DIPLOMA & ADVANCED DIPLOMA)

• Computer Fundamentals & Internet Application • Anchoring Reporting & News Reading • Aviation, Hospitality & Catering • Cosmetology • Communication Skills • Computer Animation & Graphics

+1 & +2 (MEDICAL/NON-MEDICAL/COMMERCE & ARTS) ALSO AVAILABLE IN THE COLLEGE CAMPUS FOR BBK DAV COLLEGIATE SR. SEC. SCHOOL FOR GIRLS

LIBERAL FREESHIPS & SCHOLARSHIPS TO TOPPERS & DESERVING IN ACADEMIC, CULTURAL & SPORTS ETC.

Telephones: 0183-2221757, 5095263, 6541915, 98766-12411, 80543-81383, 98883-84701, 97797-79720, 99880-17677, 94178-34619, Fax 0183-2229937
Email: bbkdavcw@jla.vsnl.net.in. Website: www.bbkdav.org

HOSTEL FACILITY AVAILABLE

Principal Dr. (Mrs.) Neelam Kamra

धर्मो बन्धुश्च मित्रञ्च धर्मोऽयं गुरुरङ्गिनाम्।
तस्माद् धर्मे मतिं धत्स्व स्वर्मोक्षसुखदायिनीम्॥

आदिपुराण, 10. 109

इस लोक में प्राणियों के लिए धर्म ही भाई, सखा और सच्चा गुरु है, इसलिए स्वर्ग, मोक्ष और सांसारिक सुख देने वाले धर्म के प्रति ही व्यक्ति को अपनी बुद्धि लगानी चाहिए। तात्पर्य है कि धर्म का आचरण ही व्यक्ति को सदा करना चाहिए।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

श्री माँ (डॉ.) उमा शक्ति जी

श्री सिद्ध गुफा, योगाश्रम,
कैलाश नगर, उमरी रोड के सामने,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

येन प्रीणाति पितरं, तेन प्रीतः प्रजापतिः।
प्रीणाति मातरं येन, पृथिवी तेन पूजिता॥

महाभा. शान्तिप. 108, 25

लोक में पुत्र अर्थात् सन्तान जिस कार्य के द्वारा पिता की पूजा करता है, इससे समझना चाहिए कि वह उससे परमपिता परमात्मा की ही पूजा कर रहा है और यदि वह किसी कार्य से माता की पूजा करता है तो समझना चाहिए कि उसने सम्पूर्ण पृथिवी की पूजा कर ली है, अर्थात् माता-पिता, सर्वप्रकारेण अतिपूजनीय होते हैं।

स्वर्गीय पिता श्री बी. डी. मनोचा

एवं

स्वर्गीया माता श्रीमती राजरानी जी

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

लै. कर्नल वी. बी. मनोचा

साऊथ एक्स्टैन्शन पार्ट-II

नई दिल्ली

यत्रापि कुत्रापि गता भवन्ति,
हंसा महीमण्डन-मण्डनानि।
हानिस्तु तेषां हि सरोवराणां,
येषां मरालैः सह विप्रयोगः॥

भामिनीविलास-

हंस चाहे कहीं चले जायें, उनके जाने से उस भूभाग की शोभा ही बढ़ती है। हानि तो उस स्थान की होती है जिस स्थान को छोड़कर हंस जाते हैं, अर्थात् यशस्वी व्यक्तियों के जाने से उस स्थान की जो क्षति होती है वह कभी पूरी नहीं होती।

विश्वेश्वरानन्द संस्थान के भूतपूर्व सदस्य तथा हितैषी

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री हरबंसलाल जी भाटिया

(जिनका दुःखद निधन दिनांक 3-3-2001 को हुआ)

एवं

पूज्या माता

स्व. श्रीमती लज्या भाटिया

(जिनका दुःखद निधन दिनांक 24-3-2006 को हुआ)

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री अशोकलाल भाटिया, 24, राजेन्द्र पार्क, नई दिल्ली।

अनाश्रिता दानपुण्यं, वेदपुण्यमनाश्रिताः।
रागद्वेषविनिर्मुक्ताः, विचरन्तीह मोक्षिणः॥

विदुरनीति, 4. 53

संसार से मोक्ष की कामना करने वाले महान् पुरुष दान तथा वेद के अध्ययन से मिलने वाले पुण्य को न चाहते हुए तथा राग और द्वेष से निर्लिप्त रहते हुए जीवन-यापन करते हैं अर्थात् संसार से निर्लिप्त रहते हैं।

❋

स्व. श्री चिरञ्जीव लाल जी सामा

जो इस संस्थान के श्रद्धालु एवं पोषक रहे और हमेशा सत्य तथा
आर्यमार्ग पर चलते रहे, उनकी इच्छा रही कि उनके बच्चे
भी सत्यमार्ग पर चलें, वैदिक रीतियों को अपनाएँ
और अन्धविश्वास से दूर रहें
(जिनका निधन 24-8-1972 को हृदयगति रुक जाने के कारण चण्डीगढ़ में हुआ)
की
पावन स्मृति
में
उनके सभी घनिष्ठ प्रेमियों, बन्धु-बान्धवों एवं विनीत बच्चों
की ओर से

प्रयोजक : **श्री जे. के. सामा** (पुत्र), चण्डीगढ़।
सर्वश्री सी. एल. सामा चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़।

नारुन्तुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः।
ययास्योद्विजते वाचा नाऽलोक्यां तामुदीरयेत्॥

मनुस्मृ. 2.161

अच्छे व्यक्तियों को चाहिए कि वे स्वयं दुःखी होने पर भी दूसरे को पीड़ा पहुँचाने वाली भाषा का प्रयोग न करें, न दूसरे के साथ द्रोह की भावना रखें। जिस भाषा से किसी के दिल को चोट पहुँचती हो, ऐसी भाषा अर्थात् वाणी का प्रयोग भी न करे, अर्थात् भद्रपुरुष को सर्वदा मीठी वाणी बोलनी चाहिए।

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री देवदत्त पाठक

(जिनका दुःखद निधन दिनांक 9-3-1997 को हुआ)

गांव एवं डाकघर बजवाड़ा, जिला होश्यारपुर

की

पुण्य स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक वर्गः

प्रोफैसर नरेन्द्र कुमार पाठक (पुत्र)

एवं

श्री पुनीत पाठक (पौत्र)

बी-31, न्यू गुरु तेगबहादुर नगर, जालन्धर

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य, प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असम्भिन्नार्यमर्यादः, पण्डिताख्यां लभेत सः॥

विदुरनीति, 1.34

जिस व्यक्ति की विद्या बुद्धि के अनुसार चलती है तथा बुद्धि विद्या का अनुसरण करती है। जो पूज्य पुरुषों की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता वही पण्डित कहलाने योग्य होता है।

अपनी पूज्या माता

स्व. श्रीमती सीता देवी पाठक

(धर्मपत्नी स्व. श्री देवदत्त पाठक)
(जिनका दुःखद निधन दिनांक 5-1-2012 को हुआ)
गांव एवं डाकघर बजवाड़ा, जिला होश्यारपुर

की

पुण्य स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग:

प्रोफैसर नरेन्द्र कुमार पाठक (पुत्र)

एवं

श्री पुनीत पाठक (पौत्र)

बी-31, न्यू गुरु तेगबहादुर नगर, जालन्धर

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति, शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिः वा, स वै पण्डित उच्यते॥

विदुरनीति 1. 24

जिस व्यक्ति के कार्य में, सर्दी, गर्मी, भय, प्रेम, सम्पत्ति तथा विपत्ति किसी भी प्रकार से विघ्न पैदा नहीं कर सकते, वही पण्डित कहलाता है अर्थात् धीर व्यक्ति किसी भी प्रकार से विघ्नों से विचलित न होकर अपना कार्य पूर्ण करता है।

अपनी प्रिया धर्मपत्नी

स्व. प्रोफैसर (श्रीमती) दिनेश पाठक

(जिनका दुःखद निधन दिनांक 13. 5. 2009 को हुआ)

गांव एवं डाकघर बजवाड़ा,
जिला होश्यारपुर
की
पुण्य स्मृति
में
समर्पित

प्रयोजक वर्गः

प्रोफैसर नरेन्द्र कुमार पाठक (पति)

एवं

श्री पुनीत पाठक (सुपुत्र)

बी-31, न्यू गुरु तेगबहादुर नगर, जालन्धर

सुकृतस्य हि शान्त्वस्य श्लक्ष्णस्य मधुरस्य च।
सम्यगासेव्यमानस्य तुल्यं जातु न विद्यते॥
महा. शां. प. 84.10

किसी के लिए सान्त्वनामय, कोमल, मीठे और अच्छे कर्म करने की प्रेरणा देने वाला वचन बोला जाय और मीठी भाषा से सदा व्यवहार किया जाय तो इससे बढकर दूसरे को वश में करने का और साधन नहीं अर्थात् अच्छे व्यवहार से सभी प्राणी व्यक्ति के वश में हो जाते हैं।

अपने पूज्य पिता

स्व. रायजादा श्री कुन्दनलाल जी आनन्द

[जिनका दु:खद निधन 28-2-1992 को हुआ]

की

21वीं बरसी पर

एवं

अपनी पूज्या माता

स्व. श्रीमती राजरानी जी आनन्द

[जिनका दु:खद निधन 7-3-1995 को हुआ]

की

18वीं बरसी पर

सादर समर्पित

श्री ओमप्रकाश आनन्द [पुत्र] तथा परिवार

जालन्धर शहर

ओ३म्

''सुमित्रः सोम नो भव'' (ऋ.)

- कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च॥
- य एतं देवमेकवृतं वेद॥ अथर्व 13. 4. 14-15॥

भज एकेश्वर भज एकेश्वर, एकेश्वर भज एकवृते।
भज ओंकारं भज ओंकारं, ओंकारं भज मोदमते॥

प्रभु के विद्यागुण कीर्तन से। मिले पुरुष को कीर्ति जतन से।
वीरत्व पराक्रम जो रखता। वही सुयश से सदा चमकता॥
शक्ति प्रबन्धन करने वाला। ब्रह्मवर्च से हो उजियाला।
अन्न और हो पाचन क्षमता। पुरुष परिश्रमी ही सब रखता॥

भज देवेश्वर भज देवेश्वर, देवेश्वर भज देव रते।
भज ओंकारं भज ओंकारं, ओंकारं भज मोदमते॥

उसको मिलती उक्त महत्ता। जाने एक देवकृत सत्ता।
एक अकेले का व्रत पालन। करता पुरुष सुहित संचालन॥

भज ओमेश्वर भज ओमेश्वर, ओमेश्वर भज गोदगते।
भज ओंकारं भज ओंकारं, ओंकारं भज मोदमते॥

❋

पूज्य पितृव्य

स्व. आचार्य पुत्तूलाल आर्य 'पुनीत'

1957-2012

पूज्य स्वामी परमानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज परशुरामपुरी, जलालाबाद (शाहजहांपुर) के आजीवन संरक्षक, अग्रणी याज्ञिक, आर्य नायक, वेद प्रचारक, देव दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट संस्कार, समाजोद्धार तथा राष्ट्र जागरण हेतु अनवरत चिन्तनशील, परमानन्द आर्य बाल विद्यालय स्थापित कर निर्बल वर्ग बालकों के लिए विद्या के द्वार खोलने वाले तथा अपने सघन चिकित्साकक्ष में भी सत्यार्थप्रकाश मुख्य चिकित्सक को भेंट करके प्राणोत्सर्ग करने वाले आपको महर्षि जमदग्नि भगवान् परशुराम की यह पावनभूमि कभी भुला नहीं सकती, आप सदैव इतिहास में प्राञ्जल बने रहेंगे।

– श्रद्धावनत पुत्री –

पण्डिता प्रतिभा भारद्वाज 'वासिष्ठ'

पूर्व सदस्य वेद प्रचार विभाग दिल्ली सभा एवं
पूर्व धर्मशिक्षिका डी. ए. वी. साहिबाबाद
वर्तमान विशिष्ट अध्यापिका बेसिक शिक्षा, अलीगढ़

अनुकूले विधौ देयं, यतः पूरयिता हरिः।
प्रतिकूले विधौ देयं, यतः सर्वं हरिष्यति॥

सुभाषितभाण्डागार, 66.1

व्यक्ति को चाहिए कि यदि परमात्मा अनुकूल है तो यथाशक्ति दान देना चाहिए क्योंकि दान देने से उत्पन्न होने वाली कमी को वह विश्वात्मा पूर्ण कर देगा। यदि विधाता प्रतिकूल है, तब भी व्यक्ति को दान देते रहना चाहिए, अन्यथा परमात्मा के निर्देश से चोरों द्वारा उसका धन चुरा लिया जायेगा। अतः दान देना सर्वोत्तम कार्य है।

स्व. पं. रुलिया राम जी ठेकेदार

जो कर्म को ही ईश्वर की आराधना मानने वाले, ठेकेदारी के काम में भी ईमानदारी को न त्यागने वाले तथा सदा विपत्तिग्रस्त लोगों की सहायता करने वाले थे। उनका 80 वर्ष की आयु में 19.4.1986 को निरन्तर अपने कार्य में व्यस्त रहते हुए ही निधन हो गया तथा उनकी धर्मपत्नी धर्मस्वरूपा, पतिपरायणा एवं सद्‌गृहिणी

स्वर्गीया श्रीमती कौशल्या देवी जी

जिनका दुःखद निधन 5. 1. 1991 को एवं उनके सुपुत्रों

सुरिन्द्र कुमार शर्मा, रवीन्द्र कुमार शर्मा तथा किरण कुमार शर्मा
एवं उनके छोटे दामाद श्री शशी भारद्वाज

जिनका दुःखद निधन 14. 3. 1992, 30. 9. 2005, 14. 2. 2009
एवं 1. 7. 2011 को क्रमशः हुआ
की पुण्य स्मृति में

प्रयोजक वर्गः

श्रीमती सन्तोष शर्मा एवं प्रो. वेदप्रकाश शर्मा (यू. एस. ए.)
अरुण, भरत, डॉ. संजय, श्रीमती प्रेम, ईशान व अनुज, होश्यारपुर।

यदा चाऽयं न बिभेति, यदा चास्मान्न बिभ्यति।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि, ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥

महाभा. आ. प., 25.53

संसार में रहता हुआ व्यक्ति जब न किसी से डरता है और न उससे कोई डरता है अर्थात् उससे भयभीत नहीं होता एवं जब वह निष्काम हो जाता है तब वह ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर लेता है अर्थात् ब्रह्म का सुख प्राप्त करता है।

स्वर्गीय भीष्म देव जी महाशय

जिनका दुःखद निधन 26-12-1989 को
गांव पालकवाह (ऊना) में हुआ

तथा

उनकी धर्मपत्नी

स्वर्गीया श्रीमती प्रीतम देवी

जो बहुत ही धर्म-परायणा तथा देवीस्वरूपा थीं

की

पुण्य स्मृति

में

सादर समर्पित।

प्रयोजक :

प्रो. वेद प्रकाश शर्मा (पुत्र)

तथा

श्रीमती सन्तोष शर्मा (पुत्रवधू)

मिन्नेसोटा स्टेट, यू. एस. ए.

शुभाशुभफलं कर्म, मनोवाग्-देहसम्भवम्।
कर्मजा गतयो नृणाम्, उत्तमाधममध्यमाः॥

मनुस्मृतिः, 12.3

मन, वाणी और शरीर से जो कर्म किए जाते हैं वे शुभ तथा अशुभ फल अवश्य प्रदान करते हैं, अर्थात् शुभ कर्म से शुभ फल एवम् अशुभ कर्म से अशुभ फल की ही प्राप्ति होती है। इसलिए मनुष्यों को अपने उत्तम, मध्यम तथा अधम कर्मों से तदनुरूप अर्थात् देव, मनुष्य, तिर्यक् नरक आदि योनियाँ प्राप्त होती हैं।

❈

जय श्री राम

स्व. श्री आत्माराम जी अग्रवाल

(एडवोकेट)

(जिनका निधन दिनांक : 4-11-1994 को हुआ)

निवासी 121, कपूर रोड, अमृतसर

व

उनकी सहधर्मचारिणी

स्व. श्रीमती द्रौपदी देवी जी

(जिनका निधन दिनांक 17-5-2000 को हुआ)

की पुण्यस्मृति में

उनके विनीत परिवार की ओर से

प्रयोजकवर्ग :

सर्वश्री देवेन्द्र कुमार पोद्दार, सुधा पोद्दार, सन्दीप व शैरी, जयदीप व गुञ्जन, सञ्जय व मीनाक्षी व समस्त प्रपौत्र और प्रपौत्रियां,

468/37 ए, चण्डीगढ़ – 160 036

तस्मात् न्यायार्जितेनैव कर्तव्यं सुकृतं सदा।
यशसे परलोकाय भवत्येव सुखाय च॥

देवीभागवतम्, 3.12.9

न्याय अर्थात् परिश्रम से उपार्जित धन से ही शुभ कार्य करना चाहिए। जो व्यक्ति मेहनत की कमायी से दान-धर्म आदि कार्य करते हैं, वे इस लोक में यश तथा परलोक में सर्वदा सुख प्राप्त करते हैं।

अपनी पूज्या माता

स्व. श्रीमती नानकीदेवी जी आनन्द

[जिनका दु:खद निधन 24-10-93 को हुआ]

की

पुण्यस्मृति

में

उनके बन्धु-बान्धवों और विनीत बच्चों

की ओर से

प्रयोजक :

श्री सी. के. आनन्द (पुत्र)

मै. दीपा एक्स्पोटर्स, नई दिल्ली- 110 065

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामाः, तत्र ममामृतं कृधि॥

ऋ. 9.113.11

हे प्रभो ! जिस अवस्था में आनन्द तथा प्रसन्नता प्राप्त होती है तथा जहाँ सम्पूर्ण कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं अर्थात् जिस अवस्था में जाकर मनुष्य कामनाओं के वशीभूत होकर कार्य नहीं करता वह अवस्था मुझे प्राप्त कराइए अर्थात् मेरी आत्मा के लिए आनन्द की वृष्टि कीजिए।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

प्राचार्या

के. आर. के. डी. ए. वी. सीनियर सैकेण्डरी स्कूल

गढ़दीवाला, होशियारपुर।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वारि-अन्न-गो-मही-वास-तिल-काञ्चन-सर्पिषाम्॥

मनुस्मृति 4.233

जल, अन्न, गाय, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सोना और घी इत्यादि का दान अच्छा दान कहा गया है, अर्थात् व्यक्ति को ये चीजें सुपात्र को देते रहना चाहिए, किन्तु यदि देखा जाय तो इन सभी में से विद्यादान सर्वश्रेष्ठ समझा गया है, अर्थात् किसी निर्धन को पढ़ाना, या जहाँ विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती हो ऐसी संस्थाओं को दान देना सर्वोत्तम है।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

प्रोमिला-इन्द्रजीत तलवाड़

(रिटायर्ड प्रिंसीपलज़)

57, कस्तूरबा नगर,

जालन्धर छावनी

यदा निवृत्तः सर्वस्मात्, कामो योऽस्य हृदि स्थितः।
तदा भवति सत्त्वस्थः ततो ब्रह्म समश्नुते॥

महा. शान्ति. प., 66.38

इस संसार में रहते हुए भी जब व्यक्ति अपने हृदय में विद्यमान सभी प्रकार की इच्छाओं से रहित हो जाता है तब वह अपने ही स्वरूप अर्थात् अपनी आत्मा में स्थिर होकर ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है अर्थात् परब्रह्म के पद को प्राप्त करने के तत्सदृश आनन्द का अनुभव करता है।

❁

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री लाला संसार चन्द जी सूद

(भूतपूर्व वाईस प्रैजिडैंट वी. वी. आर. आई., साधु आश्रम, होश्यारपुर)

जिनका निधन 10. 2. 1984 को हुआ

तथा

अपनी पूज्या माता

स्वर्गीया श्रीमती भगवती जी सूद

जिनका निधन 7. 2. 2000 को हुआ

एवं अपने बड़े भ्राता

स्व. डॉ. लैफ्टीनैंट कर्नल सुरेन्द्र मोहन जी सूद

जिनका निधन 22. 2. 2009 को हुआ

तथा

अपनी बड़ी बहिन वाईस प्रिंसिपल

स्वर्गीया सुश्री निर्मला देवी जी सूद

जिनका निधन 22. 1. 2010 को हुआ

की पावन स्मृति में

सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग:

सुश्री प्रो. शारदा सूद (बहिन) (भूतपूर्व इंगलिश-विभागाध्यक्ष, डी. ए. वी. कालिज, होश्यारपुर) तथा मेजर राजेन्द्र मोहन सूद (भाई) (रिटायर्ड), कमेटी गंज, निकट टाऊन हाल, होश्यारपुर।

श्रुतेन तपसा वाऽपि श्रिया वा विक्रमेण वा।
जयान् योऽभिभवत्यन्यान् कर्मणा हि सैव पुमान्॥

महा. उद्यो. प. 131. 22

जो व्यक्ति अपने सद्-अध्ययन से, तप से, वैभव तथा अच्छे पराक्रम से दूसरों की अपेक्षा बढा-चढ़ा होता है वही अपने सत्-पुरुषार्थ से अपना नाम सार्थक करता है।

प्रिय सखी

स्व. कुमारी प्रोमिला लाम्बा

(निधन 24-6-2010)

की

मधुर स्मृति

में

सप्रेम समर्पित

प्रयोजिका :

कुमारी एस. पंडित

5153/1, माडर्न हाऊसिंग कम्पलैक्स,

मनी माजरा, चण्डीगढ़।

दानेन भूतानि वशीभवन्ति,
दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानैः,
दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति।

महा. अनुप. 62, 9.

संसार में दान देने से सभी प्राणी अपने बन जाते हैं। दान देने से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। यहाँ तक कि दान देने से पराये भी अपने बन जाते हैं। अतः दान सभी प्रकार के कष्टों को हरने वाला है अर्थात् जीवन में किसी न किसी प्रकार दान करते रहना चाहिए।

विश्वेश्वरानन्द संस्थान के भूतपूर्व सदस्य तथा हितैषी

स्व. श्री नन्दलाल जी पण्डित

[जिनकी 35वीं बरसी 20 अप्रैल, 2013 को मनाई गई]

तथा

उनकी धर्मपत्नी

स्व. श्रीमती इकबालदेवी जी

[जिनका दुःखद निधन 10-2-88 को हुआ]

[जिनकी 25वीं बरसी 10-2-2013 को मनाई गई]

की

पुण्यस्मृति

में

प्रयोजिका :

कुमारी एस्. पण्डित

5153/1, माडर्न हाऊसिंग कम्पलैक्स, मनीमाजरा (चण्डीगढ़)

यथा नदीनदाः सर्वे, सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे, गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥

मनुस्मृति, 6.90

जिस प्रकार सभी नदियाँ तथा नाले अन्त में समुद्र में ही अपना ठिकाना बनाते हैं, अर्थात् उसी को आधार बनाते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रमों में रहने वाले लोग गृहस्थ आश्रम द्वारा ही अपना जीवन चलाते हैं, अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवम् संन्यास चारों आश्रमों की स्थिति गृहस्थाश्रम पर ही निर्भर होती है, अतः गृहस्थाश्रम सबसे श्रेष्ठ आश्रम है।

अपने पूज्य पति

स्व. श्री कुलदीप चड्डा

जो डिफैन्स इलैक्ट्रोनिक्स रिसर्च लैबोरेट्री, हैदराबाद में सहसञ्चालक थे,

की

35वीं पुण्यतिथि पर

तथा

प्रिय पुत्र

स्व. श्री विक्रम चड्डा

की

15वीं पुण्यतिथि पर

समर्पित

प्रयोजक वर्गः

श्रीमती प्रेम चड्डा

व

उनके विनीत बच्चे

हैदराबाद

स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः।
स लोके लभते कीर्तिम्, परत्र च शुभां गतिम्॥

महा. उद्योगप. 133.45

इस संसार में जो व्यक्ति अपने ही पुरुषार्थ से उन्नति करता है, वही यशस्वी होता है तथा मृत्यु के बाद परलोक में भी वह सद्गति प्राप्त करता है अर्थात् जीवन में पुरुषार्थ सर्वश्रेष्ठ कर्म है।

अपने पूजनीय पिता

स्व. पंडित बाबूराम जी शर्मा

तथा

पूजनीया माता

स्व. श्रीमती रामप्यारी जी शर्मा

की

पुण्यस्मृति में

प्रयोजक :

डॉ. एम. एल. शर्मा

1942, 46 एविन्यू, सैन फ्रान्सिस्को,

C-94116, यू. एस. ए.

गुरुर्धर्मोपदेशेन शास्ताच परिपालनात्।
दहत्यग्निरिवानिष्टान् दमयत्यहितांस् तथा ॥

महाभारत, 12. 137. 102

गुरु धर्ममय उपदेशों के द्वारा धर्म के मार्ग को बतलाता है। विद्यार्थी अवस्था में पालना करने के कारण विद्यार्थी का पालक होता है। अग्नि के समान गुरु मनुष्य के अनिष्टों को जला डालता है। गुरु ही मनुष्य का अहित करने वाले या अहित कार्यों को दबा देता है।

सम्माननीय

स्व. पं. श्री नत्थूराम शास्त्री

[दयानन्द नगर]

एवं

स्व. पं. श्री विश्वेश्वरनाथ शर्मा वात्स्य

[बाजार वकीलां]

होशियारपुर

द्वारा प्रदत्त उत्तम मार्गदर्शन, आशीर्वचन तथा सद्भाव को स्मरण करते हुए इनकी पावनस्मृति में

श्रद्धाञ्जलि समर्पित

प्रयोजिका :

डॉ. रेणु

रीडर एवं अध्यक्षा, लोक प्रशासन विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (पंजाब)

सामर्थ्ययोगं संप्रेक्ष्य देशकालौ व्ययागमौ।
विमृश्य सम्यक् च धिया कुर्वन् प्राज्ञो न सीदति॥

महा. सभाप. 12.23

वह व्यक्ति कभी भी दुःखी नहीं होता जो व्यक्ति भली प्रकार सोच विचारकर, अपनी शक्ति, देशकाल तथा आय और व्यय को सामने रखकर नित्यप्रति व्यवहार करता है अर्थात् सोच-विचार कर कार्य करने वाला व्यक्ति संसार में कभी दुःखी नहीं रहता।

अपनी पूज्या माता

स्व. श्रीमती हरकुमारी जी

तथा

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री जी. डी. गुप्ता

की

पुण्यस्मृति में समर्पित

प्रयोजक :

श्री अरविन्द गुप्ता

263, सिविल लाईन्ज़,

धर्मशाला [हि. प्र.] - 176 215

लोके सान्त्वं सदा वाच्यं न वाच्यं परुषं क्वचित्।
पूज्यान् संपूजयेत् दद्यान्न च याचेत् कदाचन॥

महाभा. आदिप. 82.13

मनुष्य को चाहिए कि वह सदा सान्त्वना देने वाले वचन बोले, कहीं पर भी कटुभाषा का प्रयोग न करे, पूज्य पुरुष का सदा आदर करे तथा कभी भी किसी भी स्थिति में भिक्षा न मांगे।

❖

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

अध्यक्ष, आर्यसमाज

सिविल लाईन्ज़, धर्मशाला - 176 215

वृत्ततस्त्वविहितानि, कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति, कर्षन्ति च महायशः॥

विदुरनीति, 4. 29

धन से रहित होने पर भी सदाचारी कुल ऊँचे कुलों की गणना में आ जाते हैं और यश के भागी हो जाते हैं, अर्थात् कुलीन व्यक्ति निर्धन होने पर भी धनिकों की श्रेणी प्राप्त करके यशस्वी हो जाते हैं।

पूज्या माता

स्वर्गीया श्रीमती कैलाशवन्ती जी

(17. 7. 1929 – 14. 6. 2010)

की

पावन-स्मृति

में सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री शिवकुमार वर्मा

डिप्टी लाईब्रेरियन, वी. वी. बी. आई. एस. एण्ड आई. एस. (पं. वि.)

साधु आश्रम, होश्यारपुर।

एकः प्रजायते जन्तुः एक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुंक्ते सुकृतम् एक एव च दुष्कृतम्॥

मनुस्मृ. 4. 240

इस संसार में प्राणी अकेला ही पैदा होता है अकेला ही मरता है। अकेला ही पुण्यों का फल तथा अकेला ही जीवन में किए गए पाप कर्मों का फल भोगता है। अतः व्यक्ति को सर्वदा ऐसा कर्म करना चाहिए जिससे वह स्वर्ग आदि लोकों को जाये।

आदरणीय पति

स्व. श्री सत्यवान् जी शर्मा

(जिला भाषा अधिकारी, होशियारपुर)

की पावनस्मृति में
सादर समर्पित

प्रयोजिका:

श्रीमती कमलेश शर्मा

कैण्ट होम्यो क्लीनिक, माला रोड,
कोटा जंक्शन (राजस्थान)

शीलेन हि त्रयो लोकाः, शक्या जेतुं न संशयः।
न हि किञ्चिद् असाध्यं वै, लोके शीलवतां भवेत्॥

महा. शान्तिप. 124.45

उत्तम स्वभाव के द्वारा कोई भी तीनों लोकों को अपने वश में कर सकता है। जो कोई भी उत्तम स्वभाव वाला है उसके लिए संसार में कोई भी कार्य असाध्य नहीं है अर्थात् उत्तम स्वभाव सभी सफलताओं का मूल है।

अपने मौसा

स्व. श्री दुर्गादास जी शर्मा

(भूतपूर्व स्वतन्त्रता सेनानी, पंजाब)

की पावनस्मृति में

सादर समर्पित

प्रयोजिका:

श्रीमती कमलेश शर्मा

कैण्ट होम्यो क्लीनिक, माला रोड,

कोटा जंक्शन (राजस्थान)

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे, सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
स वै सर्वमवाप्नोति, वेदान्तोपगतं फलम्॥

मनुस्मृति, 2.160

जिस व्यक्ति का मन और वाणी पवित्र है, जो सदा उनको अच्छी प्रकार से प्रयोग में लाता है अर्थात् सोच-विचार कर कार्य करता है तथा बोलता है। वह (शास्त्रों को न पढ़कर भी) विद्याओं के सम्पूर्ण फल को प्राप्त कर लेता है अर्थात् मन और वाणी की पवित्रता सभी प्रकार से ज्ञानदायक है।

स्व. श्री बुधराम जिन्दल जी

(स्वर्गवास फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा, 9 मार्च, 2001)

की पुण्यस्मृति में

सादर समर्पित

प्रयोजक:

श्री प्रभुदयाल बुधराम जिन्दल, चैरिटेबल ट्रस्ट

कार्यालय : बुधराम एण्ड सन्ज़,

7, नई सब्जी मण्डी, होशियारपुर।

आसमाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम्।
स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम्॥

मनुस्मृति, 2, 244

जो शिष्य या कोई भी व्यक्ति मृत्यु पर्यन्त गुरु की (तन मन तथा धन से)सेवा करता है वह ब्रह्म के उस परम पद को प्राप्त कर लेता है जहाँ से पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता अर्थात् गुरु की निष्काम भाव से की गई सेवा जन्म-मरण के चक्र से मुक्तिदायिका होती है।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ :

प्रिंसिपल

डी. ए. वी. कॉलेज

सैक्टर-10, चण्डीगढ़।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात् ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥

श्रीमद्भग. गीता.12.12

मर्म को जाने विना अभ्यास की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान की अपेक्षा परमात्मा के स्वरूप का ध्यान करना उत्तम है। ध्यान से कर्म–फल–त्याग उत्तम है और त्याग से शान्ति प्राप्त होती है।

Ambition without Knowledge is like a Boat on a Dry Land

R. N. OM PRAKASH ANAND RAVI PRAKASH ANAND & CO.

HEAD OFFICE :
Anand Bhawan,
Paltan Bazar
GUWAHATI-781 008
Tele : 0361-2541945/46
Fax : 0361-2543910
E-mail : rpahawkins@rediffmail.com.

BRANCH :
G. N. B. Road,
TINSUKIA

TELE :
95374-2338360

सर्वे सर्वादृता लोका यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वाः तस्याऽफलाः क्रियाः॥

महा. शान्ति. 108.12

जो व्यक्ति अपने माता,पिता और गुरु का आदर करता है या जिसने उनका आदर किया है। उसका सभी स्थानों पर आदर होता है। जो तीनों का सम्मान नहीं करता, उसके सभी काम जीवन में निष्फल हो जाते हैं।

IN SWEET MEMORY OF
RESPECTED MOTHER

SMT. SAVITRI DEVI MARWAHA

BY

SH. GANGA BISHAN MARWAHA (SON)
SH. SUBHASH CHANDER MARWAHA (SON)
SMT. SANTOSH KUMARI MARWAHA (DAUGHTER-IN-LAW)

ये प्रियाणि विभाषन्ते प्रियमिच्छन्ति सत्कृतम्।
श्रीमन्तो वन्द्यचरिता देवास्ते नर-विग्रहाः॥

शुक्रनीति, 1.170

जो हरएक के साथ प्रिय बोलते हैं तथा अपने द्वारा किए गए अच्छे कार्यों से दूसरों का भला चाहते हैं। ऐसे श्रीमान् तथा पूज्य चरित्रवान् व्यक्ति मनुष्यशरीरधारी देवता ही होते हैं।

परमपूज्या दादी जी

स्वर्गीया श्रीमती वसन्ती देवी

(धर्मपत्नी स्व. श्री रामनाथ पुरोहित)

(पुण्यतिथि 9 सितम्बर, 1994)

की

पावनस्मृति में

सादर समर्पित

प्रयोजक:

श्री व्रजेश शर्मा (सुपुत्र प्रो. कृष्णमुरारी शर्मा)

श्रीधाम, गली नं. 6, नारायण नगर, होशियारपुर।

अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

व्याससमृति, 4.19

व्यक्ति का यह शरीर नश्वर है, जीवन भर अर्जित किया गया धन भी नाशवान् है, मृत्यु भी हमेशा शिर पर बैठी रहती है, यह सब कुछ समझकर धनसंग्रह करे और उसके द्वारा धर्म का आचरण भी करना चाहिए अर्थात् दान इत्यादि देकर उस धन का सदुपयोग करना चाहिए।

❈

प्रिय सुपुत्री

स्व. श्रीमती सीमा अग्रवाल

की

पावन स्मृति

में

राज एवं सुशील मित्तल

सर्वश्री एयर लाईन इंजिनीयरिंग कारपोरेशन

गली नं. 8, प्रताप नगर, लुधियाना

फोन : 0161-2530672, मोब.: 98550-60555

अणोरणीयान् सुमनाः सर्वभूतेषु जागृविः।
पितरं सर्वभूतानां पुष्करे निहितं विदुः॥

महाभा. उद्योगप. 45/28

अणु से भी छोटा सुमनस्क सभी प्राणियों में जागृत रूप से रहने वाला सभी प्राणियों का परमपिता परमात्मा सभी के हृदयरूपी कमल में विराजमान रहता है। ऐसे परमात्मा का स्मरण करना प्रत्येक का पहला काम होना चाहिए।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

श्री भीष्म कुमार गुप्ता

एडवोकेट

ट्रस्टी, माता निहालदेवी ट्रस्ट (रजि.)

5 लाला घेरामल लेन, ऊधमपुर (जे. एण्ड. के.)

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनो ऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

गीता, 7. 16.

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन इस संसार में श्रेष्ठ कर्म करने वाले, दुःखी, जानने की इच्छा वाले ज्ञानवान् अर्थात् कामना रहित एवं लालची – चार प्रकार के भक्त लोग ही मेरा भजन करते हैं।

पूजा करते हैं मेरी चार ही तरह के आदमी।
तालिबे हक, वाकफ़े हक, गमज़दा और लालची॥

HARI RAM KAKAR

SUBHASH CHANDRA KAKAR

SURESH CHANDRA KAKAR

ASHIMA KAKAR

With best compliments from :

SHILA HARI CHARITABLE TRUST

TRUSTEES : **Hari Ram Kakar, Subhash Chandra Kakar**
Suresh Chandra Kakar, Ashima Kakar

House No. 490,
Sector 14,
Faridabad–121 007 (Haryana)

गुणानां वा विशालानां सत्-काराणां च नित्यशः।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः॥

स्वप्नवासव., 4-10

इस संसार में बहुत से गुणों वाले तथा गुणी व्यक्तियों का सत्कार करने वाले अनेक व्यक्ति देखे जा सकते हैं अर्थात् उनकी इज्जत करने वाले बहुत होते हैं। परन्तु गुणों का मूल्याङ्कन करने वाले व्यक्ति बहुत ही कम मिलते हैं।

❁

माननीय स्व. महाराजा हरि सिंह जी
आदरणीया स्व. महारानी तारा देवी जी

तथा

महारानी यशोराज्यलक्ष्मी जी

की पावनस्मृति में
सादर समर्पित

प्रयोजक:

माननीय डॉ. कर्ण सिंह

प्रधान, हरितारा चैरिटेबल ट्रस्ट, नई दिल्ली

पुमांसो ये हि निन्दन्ति वृत्तेनाभिजनेन च।
न तेषु निवसेत् प्राज्ञः श्रेयोऽर्थी पापबुद्धिषु॥

महाभा. आदिप. 74.10

जो पुरुष आत्म-कल्याण की इच्छा करता है, उसको चाहिए कि वह ऐसे व्यक्तियों के सम्पर्क में न रहे जो सदाचारी, अच्छे कुल में उत्पन्न तथा लोककल्याण करने वालों की निन्दा करते हों अर्थात् बुरे व्यक्तियों के सम्पर्क में अच्छे व्यक्तियों को नहीं रहना चाहिए।

अपने पूज्य पिता

स्व. जमनादास सहगल

(जिनका निधन 14-4-1973 को हुआ)

तथा

पूज्या माता

स्व. श्रीमती पार्वती सहगल

(जिनका निधन 21-7-1976 को हुआ)

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री वीरेन्द्र सहगल

सी-३६, कनाट प्लेस, नई दिल्ली-110 001.

निश्चित्य यः प्रक्रमते, नान्तर्वसति कर्मणः।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा, स वै पण्डित उच्यते॥

विदुरनीति, 1. 29

जो व्यक्ति पहिले निश्चय कर लेता है और बाद में किसी कार्य को करता है, कार्य प्रारम्भ करके पुनः बीच में नहीं छोड़ता, अपने समय को व्यर्थ की बातों में नष्ट नहीं करता तथा मन को वश में रखता है वह पण्डित कहलाता है।

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री दयालचन्द जी चावला

तथा

पूज्या माता

स्व. श्रीमती इन्द्रा जी चावला

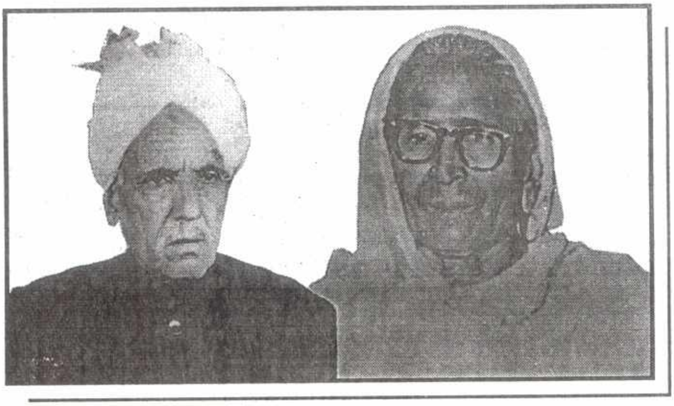

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक :

डॉ. एस. एल. चावला

चावला चिल्ड्रन हौस्पीटल, ऊधमसिंह नगर, जालन्धर शहर

यो हि मित्रेषु कालज्ञः, सततं साधुः वर्तते।
तस्य राज्यं च कीर्तिश्च, प्रतापश्चापि वर्धते॥

वा. रा. किष्कि. 29.10–11

समय के अनुसार जो व्यक्ति ठीक समय में मित्रों के कार्य में अच्छी प्रकार से सहायता करता है। उसका यश, स्वामित्व तथा प्रभाव निरन्तर बढ़ता है अर्थात् समय पर मित्र की सहायता सर्वप्रकारेण मान बढाने वाली होती है।

PREETHAM

SENIOR CITIZEN'S ENCLAVE

POLLACHI, TAMIL NADU –642 002

A HOME FOR SENIOR CITIZENS

A Calm, Quite & Peaceful place for Comfort, Care Homely Veg. Food, Prayers, Satsangs & Spiritual Discourse with full Med. Facilities close by, etc.

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

WG. CDR. LAKSHMINARAYANAN S. R. (RTD.)

CONTACT : – Tel.: 98422–54202/ 94430–54204

e-mail :– vanitha@preetham.org.in Visit at : www.preetham.org.in.

बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत्।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानम् शान्तिं भोगेन विन्दति॥

विदुरनीति, 4.52

मनुष्य अपनी बुद्धि की चतुराई से निर्भय हो सकता है, अर्थात् भय को भगा सकता है। तप के द्वारा शान्ति प्राप्त कर सकता है, गुरु की सेवा करके ज्ञान प्राप्त कर सकता है तथा योगाभ्यास से शान्ति प्राप्त कर सकता है।

अपने पूज्य पिता

स्व. चौ. रुलियाराम जी

(जिनका निधन 20-8-1983 को हुआ)

व

पूज्या माता

स्व. श्रीमती मेला देवी जी

(जिनका निधन 15-12-1978 को हुआ)

की पुण्यस्मृति में
सादर समर्पित

प्रयोजिका :

डॉ. लीला सैनी

प्रेमगढ़, होश्यारपुर।

Sh. Balbir Raj Sondhi

(1926–1993)

Who had lived well, laughed often and loved much,
Who had gained the respect of intelligent women, men and love of children; Who never locked appreciation of earth's beauty or failed to express it; Who followed his dreams and pursued excellence in each task.

He continues to inspire us..........

Family, Directors & Staff

55 glorious years.....

PKF

Trusted Since 1958

PKF FINANCE LTD.

Corporate Office : "Balbir Tower", G. T. Road, Jalandhar–144 001
Ph.: 0181–2238611,15, Fax : 2236802
www.pkffinance.com

• FINANCE • DEPOSITS • LOCKERS • INSURANCE • FOREX • TYRES

HANS RAJ MAHILA MAHA VIDYALAYA

MAHATMA HANS RAJ MARG, JALANDHAR

RE-ACCREDITED A GRADE WITH 3.83 (HIGHEST SCORE IN INDIA) BY NAAC
ADJUDGED AS COLLEGE WITH POTENTIAL FOR EXCELLENCE BY UGC & STAR COLLEGE OF GNDU

COURSES AVAILABLE IN THE COLLEGE

UNDERGRADUATE COURSES

- B. M. M. (Bachelor of Multimedia)
- B. F. A. (Bachelor of Fine Arts)
- B. Sc. Fashion Designing
- B. D. (Bachelor of Design)
- B. Sc. Biotechnology
- B. Sc. (Med/ Non-Med with Bio-Informatics)
- B. Sc. (Med/ Non-Med with Food Sc. & Quality Control)
- B. Sc. (Med/Non-Med with BT)
- B. Sc. (Economics)
- B. Sc. (Computer Science)
- B. Sc. (I.T.)
- B.C.A.
- B.Com. (Prof.)
- B.Com (Reg.)
- B.B.A.
- B.A.

POST-GRADUATE COURSES

- M. Sc. (Bioinformatics)
- M. Sc. (Botany)
- M. Sc. (I. T.)
- M. Sc. (Computer Science)
- M. Sc. (Fashion Designing)
- M. Com.
- M. A. (English, Hindi, Pol. Sc.) Music (Vocal), Music (Inst.)

POST - GRADUATE DIPLOMA COURSES

- Cosmetology
- Garment Construction & Fashion Dsg.
- Computer Application
- Business Management
- Cyber Law and Information Security

VOCATIONAL SUBJECTS AT B. A. LEVEL

- Mass Communication & Video Production
- Fashion Designing & Garment Construction
- Computer Applications
- Journalism & Mass Comm.
- Cosmetology
- Information Technology

UNDERGRADUATE COURSES WITH HONOURS

- English
- Hindi
- Sanskrit
- Pol. Science
- Psychology
- Music (Vocal)
- Commerce

ADD ON COURSES

- Communication Skills
- Fashion Designing
- Cosmetology
- Aviation, Catering & Hospitality
- French Language
- Environmental Protection
- Office Automation & Web Dsg.
- Investment Management
- Interior Decoration
- Bio–Informatics
- Applied Designing
- Computer Aided Accounts
- Banking & Insurance

A FLEET OF BUSES

VIDEO CONFERENCING FACILITY

HOSTEL WITH MODERN AMENITIES

VIRTUAL LIBRARY

Wi–Fi CAMPUS

ACADEMICALLY No. 1

UNIV. RESULTS 2011–12

- 32 FIRST POSITIONS
- 32 SECOND POSITIONS
- 27 THIRD POSITIONS

Ph.: 0181–2253710, 2204198, Fax : 0181–2252436
E-mail : hmv_jal@yahoo.co.in Web : www.hrmmv.org.

DR. REKHA KALIA BHARDWAJ
Principal

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम, होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम, होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-४-२०१३ को प्रकाशित।